सहायक वाचन

कक्षा 6

सत्रः 2026-27

राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् छत्तीसगढ़, रायपुर

यह पाठ्यपुस्तक शासकीय संपत्ति है। इसका क्रय-विक्रय अवैधानिक है।

निःशुल्क वितरण हेतु

क्रिएटिव प्रिंट्स एण्ड पब्लिशर्स, रायपुर

''छत्तीसगढ़ पाठ्यपुस्तक निगम'' द्वारा प्रदायित आंतरिक पृष्ठ 70 जीएसएम वॉटरमार्कड रील मैपलिथो पेपर कॉनफॉर्मिंग टू बीआईएस स्पेशीफिकेशन 1848 (पार्ट–1):2018 विथ लेटेस्ट अमेडमेंट, इन साईज 84 सेमी विड्थ रील तथा कव्हर पृष्ठ 220 जीएसएम एमजी कव्हर पेपर कॉनफॉर्मिंग टू बीआईएस स्पेशीफिकेशन आईएस 6956:2001 (रिफर्मड 2017) विथ वन साईड ग्लेज्ड (शाईन) एंड लेटेस्ट अमेडमेंट्स इन शीट साईज 61cm x 86.5cm पर मुद्रित किया गया है।

मुद्रित पुस्तकों की संख्या : 4,65,457

प्रेरणास्रोत
डॉ. कमलप्रीत सिंह (भा.प्र.से.)
सचिव, स्कूल शिक्षा विभाग, छत्तीसगढ़

मार्गदर्शक
ऋतुराज रघुवंशी (भा.प्र.से.)

संचालक
राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् छ.ग., रायपुर

सलाहकार

जे.पी. रथ
अतिरिक्त संचालक
राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् छ.ग., रायपुर

के. कुमार
संयुक्त संचालक
राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् छ.ग., रायपुर

समन्वयक
कौस्तभ चटर्जी (सहायक संचालक)
डॉ.डी.के.बोदले (से.नि.सहायक प्राध्यापक)

विषयवस्तु चयन तथा संपादन
डॉ. चितरंजन कर, श्री बलदाऊ राम साहू

विषय विशेषज्ञ
डॉ. आशुतोष मंडावी, श्री अशोक कुमार तिवारी, श्री ज्ञान प्रकाश द्विवेदी

लेखन समूह
श्री विनय शरण सिंह, श्री श्याम नारायण श्रीवास्तव , श्री सीताराम साहू,
श्री पोखन लाल जायसवाल, श्री द्रोण साहू, श्रीमती मल्लिका रुद्रा,
श्रीमती प्रिया जोशी, श्रीमती रजनी शर्मा

टंकण
श्री डीकेश्वर वर्मा, कु.ईशा श्रीवास्तव

आवरण, पृष्ठांकन एवं लेआऊट डिजाईन
हिमांशु वर्मा, सुधीर कुमार वैष्णव

राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् छत्तीसगढ़, रायपुर

आमुख

छत्तीसगढ़ स्कूली शिक्षा में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद की पुस्तकों को अनुकूलित कर बच्चों को राष्ट्रीय स्तर के समतुल्य लाने का प्रयास किया जा रहा है, ताकि राज्य के बच्चे किसी भी स्तर पर कमतर न रहें। साथ ही वे राज्य के पर्व-परंपराओं और कला- संस्कृति से भी परिचित हो सकें। इस उद्देश्य से छत्तीसगढ़ शासन स्कूल शिक्षा विभाग ने कक्षा 3 से 8 तक के विद्यार्थियों के लिए सहायक-वाचन निर्माण करने का निर्णय लिया है। इस पुस्तक के माध्यम से वाचन के प्रमुख उद्देश्य, जैसे- पठन में रुचि का विकास, अर्थ ग्रहण करने की क्षमता, अभिव्यक्ति कौशल का संवर्धन, कल्पनाशीलता एवं चिंतन शक्ति का विकास करना है, जिससे बच्चे स्वतः स्फूर्त पठन एवं वाचन की ओर प्रेरित हों सकें और उनमें स्वतंत्र रूप से सीखने की प्रवृत्ति विकसित हो सके।

यह पुस्तक पाठ्यपुस्तक से इतर है। इस पुस्तक में रोचक कहानियों, कविताओं एवं महापुरुषों की जीवनियों के साथ साथ स्थानीय इतिहास, कला-संस्कृति, तीज -त्यौहार, पर्व-परंपराओं आदि की जानकारियां दी गई हैं। प्रायः ग्रामीण क्षेत्र के बच्चों को पाठ्यपुस्तक के अतिरिक्त पढ़ने के लिए पत्र-पत्रिकाएँ उपलब्ध नहीं होती, इस कारण वे बहुत-सी जरुरी जानकारियाँ प्राप्त करने से वंचित रह जाते हैं।

आज शिक्षा के परिदृश्य में आमूल-चूल परिवर्तन आया है। अब बच्चे स्थानीय न होकर वैश्विक हो गए हैं। ज्ञान बढ़ा है तो प्रतिस्पर्धा भी बढ़ी है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 बाल-केंद्रित शिक्षा, अनुभव आधारित शिक्षा एवं समृद्ध भाषाई शिक्षा पर विशेष बल देती है। इसलिए इस पुस्तक को तैयार करने में बहुआयामी दृष्टिकोण अपनाया गया है, ताकि बच्चे केवल पढ़ना ही न सीखें, बल्कि पढ़कर समझें, सोचें और तथ्यों को अपने अनुभवों से जोड़ सकें।

हम जानते हैं कि भारत का अपना गौरवशाली और समृद्ध इतिहास रहा है। इस समृद्ध इतिहास के साथ-साथ वे राज्य के स्थानीय कला-संस्कृति, इतिहास और लोक-जीवन को जानें और उस पर गर्व कर सकें। यह इस पुस्तक का व्यापक उद्देश्य है।

यह पुस्तक प्रायोगिक संस्करण के रूप में प्रस्तुत की जा रही है। इस संदर्भ में विद्यार्थियों, शिक्षकों , पालकों एवं शिक्षाविदों से विनम्र अपेक्षा है कि वे हमें अपने बहुमूल्य सुझाव प्रदान करें, ताकि आगामी समय में इस पुस्तक को और अधिक उपयोगी, प्रभावी एवं छात्र केंद्रित बनाया जा सके।

मुझे विश्वास है कि यह पुस्तक शिक्षकों के लिए शिक्षण को अधिक प्रभावी एवं रोचक बनाने में उपयोगी सिद्ध होगी तथा विद्यार्थियों के सर्वांगींण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएँगे।

इस महत्वपूर्ण कार्य के लिए पुस्तक निर्माण से जुड़े सभी शिक्षाविदों, विशेषज्ञों, लेखकों एवं सहयोगियों को हार्दिक शुभकामनाएं और बधाई देता हूँ।

संचालक
राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण,
रायपुर छत्तीसगढ़

शिक्षकों के लिए निर्देश

छत्तीसगढ़ शासन की विशिष्ट सोच के अनुरूप कक्षा तीसरी से आठवीं तक के विद्यार्थियों के लिए सहायक वाचन पुस्तक का निर्माण राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद के द्वारा किया गया है। इस पुस्तक का उद्देश्य विद्यार्थियों में पठन के प्रति रुचि विकसित करना, स्वतः स्फूर्त वाचन की आदत डालना तथा उनकी भाषा, चिंतन क्षमता का विकास करना तथा छत्तीसगढ़ के सामाजिक परिवेश से परिचित कराना है। अतः राज्य के विद्यालय में कार्यरत शिक्षकों से अपेक्षा की जाती हैं कि वे शासन की मंशा के अनुरूप सहायक वाचन पुस्तक के प्रभावी उपयोग से बच्चों में अपेक्षित दक्षताओं का विकास के लिए आनंदमय वातावरण निर्मित करें।

शिक्षकों से निम्नलिखित बिंदुओं के अनुसार शिक्षण कार्य करने की अपेक्षा की जाती है—

1. सहायक वाचन को परीक्षा की दृष्टिकोण से प्रस्तुत न करें।बल्कि कक्षा में सहज, रोचक एवं सहभागितापूर्ण वातावरण बनाएँ, ताकि बच्चे इसे उत्साहपूर्वक पढ़ने के लिए तैयार रहे।

2. विद्यार्थियों को स्वयं पढ़ने, समझने एवं अपने शब्दों में अभिव्यक्त करने का अवसर दें।

3. बच्चों से क्रमशः सस्वर वाचन, समूह वाचन तथा मौन वाचन करवाएँ, जिससे स्पष्ट उच्चारण एवं अर्थग्रहण की क्षमता का विकास हो सके।

4. पाठों को बच्चों के परिवेश, स्थानीय संस्कृति, तीज-त्यौहार एवं दैनिक जीवन से जोड़कर समझाएँ, ताकि वे विषयवस्तु को सहज रूप से आत्मसात कर सकें। छत्तीसगढ़ की लोक संस्कृति, महापुरुषों, ऐतिहासिक स्थलों और जैव-विविधता पर चर्चा कर समझ विकसित करें। यदि पाठ किसी विशेष जिले या त्यौहार (जैसे: हरेली, तीजा) पर आधारित है, तो बच्चों को उनके व्यक्तिगत अनुभवों को साझा करने के लिए प्रोत्साहित करें।

5. पाठ पढ़ाने के बाद बच्चों से प्रश्न पूछें, उनके विचार सुनें तथा चर्चा कराएँ। इससे उनमें आत्मविश्वास एवं अभिव्यक्ति कौशल का विकास होगा।

6. कक्षा में कहानी कथन, चित्रांकन, भूमिका निर्वहन, कविता वाचन, समूह चर्चा

एवं लेखन जैसी गतिविधियों के माध्यम से सीखने को रोचक बनाएँ।

7. पाठों में निहित मानवीय संवेदनाओं, नैतिक मूल्यों एवं सामाजिक सरोकारों को बच्चों के जीवन से जोड़कर समझाएँ।

8. बच्चों को नियमित रूप से पुस्तक पढ़ने हेतु अतिरिक्त पठन सामग्री के उपयोग के लिए प्रेरित करें।

9. कक्षा में प्रत्येक विद्यार्थी को पढ़ने एवं बोलने का अवसर दें। धीमी गति से सीखने वाले एवं संकोची बच्चों पर विशेष ध्यान देवें।

10.महापुरुषों या लोक कथाओं पर आधारित पाठों का कक्षा में मंचन करवाएँ।

11. बच्चों को छत्तीसगढ़ के पारंपरिक खान-पान, खेलकूद, आभूषण, तीज-त्योहार या औजारों के बारे में जानकारी एकत्र करने हेतु प्रोजेक्ट कार्य दें।

13. सहायक वाचन का मूल्यांकन पारंपरिक रटने वाली पद्धति से नहीं होना चाहिए। बल्कि मूल्यांकन के लिए खुले प्रश्न पूछें, जैसे: "यदि आप उस जगह होते तो क्या करते?" या "आपको इस कहानी का कौन सा पात्र सबसे अच्छा लगा और क्यों?" आदि।

टीप - यह पुस्तक एक प्रायोगिक संस्करण है। अतः शिक्षकगण अपने अनुभव एवं सुझाव साझा करें, ताकि भविष्य में पुस्तक को और अधिक उपयोगी बनाया जा सके।

संचालक
राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण,
रायपुर छत्तीसगढ़

राज्य शिक्षा स्थायी समिति, छत्तीसगढ़

नाम	पद नाम
1. श्री आलोक चक्रवाल, कुलपति, गुरु घासीदास केन्द्रीय विश्वविद्यालय, बिलासपुर	- अध्यक्ष
2. संचालक, राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् छत्तीसगढ़, रायपुर	- सदस्य सचिव
3. संचालक, लोक शिक्षण संचालनालय, छत्तीसगढ़	- सदस्य
4. मिशन संचालक, समग्र शिक्षा, रायपुर, छत्तीसगढ़	- सदस्य
5. डॉ. वासुदेव साहसी, सहा.प्रा., शा.जे. योगानंदम छ.ग. महाविद्यालय, रायपुर	- सदस्य
6. डॉ. सुभाष चन्द्राकर, प्राध्या., दुर्गा महाविद्यालय, रायपुर	- सदस्य
7. श्री मनीष देवांगन, वि.खं. शिक्षा अधिकारी, कार्या. धरसींवा, जिला-रायपुर	- सदस्य
8.श्री नरेन्द्र सिंह राजपूत, सहा. शिक्षक, प्राथ. विद्या. सिंवनी, खुर्द (बोड़ला), जिला-कबीरधाम	- सदस्य
9. श्री मनोज सिंह, शा. शिक्षा महाविद्यालय, बिलासपुर	- सदस्य
10. श्री दिलीप केसरवानी, पूर्व प्राचार्य, कबीर नगर, रायपुर	- सदस्य

अनुक्रमणिका

पाठ सामग्री		पृष्ठ क्रमांक
1. माँ! बस यह वरदान चाहिए (कविता)	लेखक मंडल	1
2. स्वच्छता का संकल्प (कहानी)	लेखक मंडल	2
3. छत्तीसगढ़ का इतिहास : दक्षिण कोसल (आलेख)	लेखक मंडल	4
4. सबके मित्र राम	लेखक मंडल	6
5. साहस और राष्ट्रभक्ति का प्रतीक- छत्रपति शिवाजी	लेखक मंडल	8
6. चंदैनी गोंदा : छत्तीसगढ़ का लोकनाट्य (लोक नृत्य)	लेखक मंडल	10
7. इंद्रावती : बस्तर की जीवन रेखा (आलेख)	लेखक मंडल	13
8. कपिलेश्वर मंदिर बालोद (तीर्थस्थल)	लेखक मंडल	15
9. बेटियाँ (कविता)	लेखक मंडल	17
10. भारतीय ज्ञान-संपदा की प्रतिमूर्ति : पं. मदन मोहन मालवीय (आलेख)	लेखक मंडल लेखक मंडल	18
11. रतनपुर का इतिहास (इतिहास)	लेखक मंडल	21
12. विशेष पिछड़ी जनजाति-बैगा (आलेख)	लेखक मंडल	24
13. कोरबा जिले के प्रमुख पर्यटन स्थल (पर्यटन स्थल)	लेखक मंडल	26
14. नमन का पर्व - स्वतंत्रता दिवस (कहानी)	लेखक मंडल	29
15. लोक नायक भगवान बिरसा मुंडा (जीवनी)	लेखक मंडल	33
16. राजकीय पशु वनभैंसा (आलेख)	लेखक मंडल	35
17. भारत देश हमारा (कविता)	लेखक मंडल	38
18. बैलाडिला पहाड़ी, दंतेवाड़ा (आलेख)	लेखक मंडल	39
19. भतरा नाट (गीत नाट्य)	लेखक मंडल	41
20. बाल शहीद शिरीष पुष्पेंद्र मेहता (आलेख)	राजेन्द्र श्रीवास्तव	44
21. प्रकृति के गीत	सुमित्रा नंदन पंत	46
नोट्स		

माँ! बस यह वरदान चाहिए

माँ! बस यह वरदान चाहिए।
जीवन-पथ जो कंटकमय हो,
विपदाओं का घोर वलय हो,
किंतु कामना एक यही, बस,
प्रतिपल पग गतिमान चाहिए।।1।।

हास मिले या त्रास मिले,
विश्वास मिले या फाँस मिले,
गरजे क्यों न काल ही सम्मुख,
जीवन का अभिमान चाहिए।।2।।

जीवन के इन संघर्षों में,
दुःख-कष्टों के दावानल में,
तिल-तिल कर तन जले न क्यों, पर,
होठों, पर मुस्कान चाहिए।।3।।

कंटक-पथ पर गिरना, चढ़ना,
स्वाभाविक है हार-जीतना,
गिरकर फिर-फिर उठें सदा हम,
वह गुरुता का ज्ञान चाहिए।।4।।

स्वच्छता का संकल्प

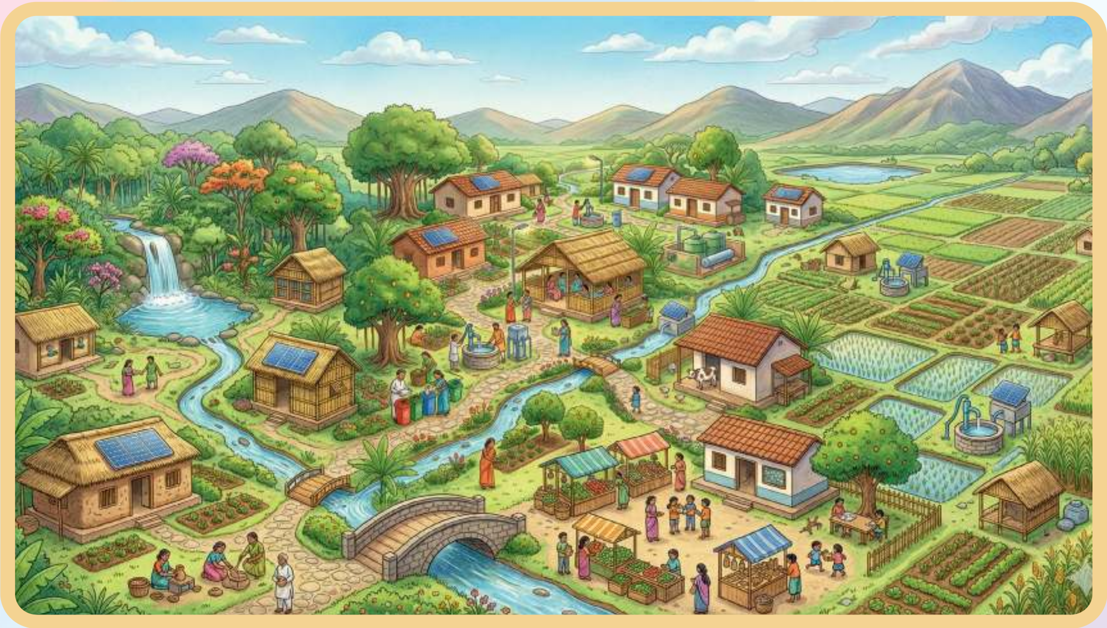

गाँव में लोग बड़े सादे और मेहनती थे, पर गाँव की एक बड़ी समस्या थी - गंदगी। जगह-जगह कूड़े-करकट के ढेर लगे रहते थे। गलियों में प्लास्टिक, पत्ते और सड़े-गले कचरे बिखरे रहते थे । नालियाँ गंदे पानी से भरी हुई थीं। बरसात के दिनों में तो बदबू और भी बढ़ जाती थी।

गाँव का सारा गंदा पानी बहकर तालाब में जाकर मिलता था। वही तालाब गाँव की पहचान भी था। लोग उसी में स्नान करते, कपड़े धोते और कई बार पूजा के लिए भी उसी का पानी ले जाते। तालाब का पानी धीरे-धीरे हरा और गंदा हो गया था, लेकिन लोगों ने इसे अपनी किस्मत मान लिया था।

गाँव के बच्चे रोज स्कूल जाते थे। वहाँ वे किताबों में स्वच्छता का पाठ पढ़ते। शिक्षक उन्हें समझाते कि स्वच्छता ही अच्छे जीवन की पहली सीढ़ी है। बच्चे बड़े ध्यान से सब सुनते, पर जब वे स्कूल से लौटते और अपने ही गाँव की हालत देखते, तो उनके मन में सवाल उठता- अगर स्वच्छता इतनी जरूरी है, तो हमारा गाँव गंदा क्यों है?

एक दिन कुछ बच्चों ने हिम्मत जुटाई। वे अपने कक्षा शिक्षक के पास गए और बोले, "गुरुजी, हम किताबों में जो पढ़ते हैं, क्या उसे अपने गाँव में नहीं अपना सकते?" शिक्षक उनके उत्साह को देखकर बहुत खुश हुए। उन्होंने कहा, "क्यों नहीं! बदलाव की

शुरुआत हमसे ही तो होती है।"

अगले दिन स्कूल में इस विषय पर सभा रखी गई। सभी बच्चों और शिक्षकों ने मिलकर निश्चय किया कि वे रोज़ सुबह स्कूल शुरू होने से पहले एक घंटा गाँव की सफाई करेंगे। किसी ने झाड़ू लाने की ज़िम्मेदारी ली, किसी ने टोकरी और फावड़ा। कुछ बच्चों ने अपने घरों से पुराने ड्रम और थैले भी जुटाए, ताकि कूड़ा इकट्ठा किया जा सके।

पहले दिन वे मुख्य गली से शुरू हुए। बच्चों ने झाड़ू लगाई, कचरा उठाया और उसे एक जगह इकट्ठा किया। शिक्षकों ने नालियों की सफाई में मदद की। दूसरे दिन वे तालाब के पास पहुँचे। वहाँ से प्लास्टिक और कूड़ा हटाया गया। धीरे-धीरे गाँव की तस्वीर बदलने लगी।

शुरू में कुछ बड़े लोग दूर खड़े होकर ये सब देख रहे थे। उन्हें लगा कि बच्चे कुछ दिन में थक जाएँगे, पर जब उन्होंने देखा कि बच्चे रोज समय पर आकर पूरे मन से सफाई कर रहे हैं, तो उनका मन भी पिघल गया। तीसरे-चौथे दिन कुछ युवक भी उनके साथ जुड़ गए। फिर महिलाएँ भी आगे आईं और घरों के सामने की सफाई में हाथ बँटाने लगीं।

सिर्फ एक सप्ताह में गाँव की सूरत बदल गई। गलियाँ साफ हो गईं, नालियाँ बहने लगीं, और तालाब का पानी भी पहले से साफ दिखने लगा। अब वहाँ बदबू नहीं आती थी। लोग गर्व से कहते, "यह हमारे बच्चों की मेहनत का फल है।"

सप्ताह के अंत में पूरे गाँव की एक बैठक बुलाई गई। उसमें सबने मिलकर संकल्प लिया कि अब कोई भी कूड़ा इधर-उधर नहीं फेंकेगा। हर घर में कूड़ा रखने की अलग व्यवस्था होगी। नालियों को समय-समय पर साफ किया जाएगा और तालाब में गंदा पानी जाने से रोका जाएगा।

उस दिन से गाँव में एक नई शुरुआत हुई। अब बच्चे गर्व से अपने स्कूल में स्वच्छता का पाठ पढ़ते, तथा उन बातों को अपने गाँव में लागू करते । उनका गाँव अब पहले से अधिक सुंदर और स्वस्थ बन गया ।

प्राचीन छत्तीसगढ़ : दक्षिण कोसल

प्राचीन काल में छत्तीसगढ़ क्षेत्र को दक्षिण कोसल कहा जाता था। दक्षिण कोसल में वर्तमान छत्तीसगढ़ का अधिकांश भाग शामिल था। यह क्षेत्र घने वनों, नदियों और उपजाऊ भूमि से युक्त था। महानदी, शिवनाथ और इंद्रावती जैसी नदियाँ इस क्षेत्र की प्रमुख नदियाँ रही हैं, जो आज भी छत्तीसगढ़ को अपने निर्मल जल से पोषित करती हैं।

दक्षिण कोसल में हिंदू धर्म के साथ-साथ बौद्ध धर्म का भी प्रभाव था। यहाँ के लोग सरल जीवन जीते थे और कलाप्रेमी थे । स्थापत्य कला और मूर्तिकला में भी वे पारंगत थे। यही कारण है कि छत्तीसगढ़ में मंदिर-निर्माण की परंपरा विकसित हुई। छत्तीसगढ़ के चंदखुरी (रायपुर) में माता कौशल्या का मंदिर है, जो पूरे भारत में एक मात्र मंदिर है। इसका इतिहास लगभग 8 वीं से 10 वीं शताब्दी तक माना जाता है। इसका निर्माण सोमवंशी राजाओं ने कराया था। इस निर्माण के पीछे की एक कथा भी प्रचलित है। सोमवंशी राजा को स्वप्न में कौशल्या माता के दर्शन हुए, जिसके बाद उन्हें खुदाई में माता कौशल्या की गोद में बाल रूप में श्रीराम की मूर्ति प्राप्त हुई। इस स्वयंभू मूर्ति

को तालाब के बीच द्वीप पर स्थापित कर मंदिर बनाया गया। चंदखुरी (प्राचीन चंद्रपुरी) को भगवान राम का ननिहाल माना जाता है, जहाँ माता कौशल्या का जन्म हुआ।

छत्तीसगढ़ अपनी सांस्कृतिक समृद्धि के लिए प्रसिद्ध था, जिसका प्रमाण आज भी उपलब्ध है। सिरपुर में 8वीं-9वीं शताब्दी में निर्मित गंधेश्वर मंदिर, बौद्ध विहार, राजिम में राजीव लोचन मंदिर, दंतेवाड़ा में दंतेश्वरी मंदिर, कबीरधाम (कवर्धा) में भोरमदेव मंदिर, मल्हार में विष्णु जी के चतुर्भुजी मंदिर प्रमुख हैं।

राजीव लोचन मंदिर, राजिम

माता दंतेश्वरी मंदिर, दंतेवाड़ा

भोरमदेव मंदिर, कबीरधाम

आस्था के इन केंद्रों में विभिन्न अवसरों पर मेलों का आयोजन होता आ रहा है। इनका धार्मिक और सामाजिक महत्व है। इसके अलावा यह बाज़ार का भी एक केंद्र होता है। मेलों में लोक-कलाकारों को अपनी कला के प्रदर्शन के लिए मंच मिलता है।

दक्षिण कोसल की ऐतिहासिक विरासत आज भी छत्तीसगढ़ की संस्कृति, परंपराओं और लोककलाओं में दिखाई देती है।

सबके मित्र राम

वनवास का समय था। अयोध्या के राजकुमार राम राजमहलों का सुख छोड़कर जंगल-जंगल भटक रहे थे। उनके साथ माता सीता और छोटे भाई लक्ष्मण भी थे। कठिनाइयाँ थीं, अभाव थे, पर राम के चेहरे पर कभी शिकायत नहीं दिखती थी। वे हर मिलने वाले से प्रेम और सम्मान से बात करते थे। यही कारण था कि धीरे-धीरे वे सबके प्रिय बन गए।

राम केवल मनुष्यों के ही नहीं, पशु-पक्षियों और वनवासियों के भी मित्र थे। वे वर्ण, वेशभूषा, धन या पद देखकर किसी से व्यवहार नहीं करते थे। उनके लिए हर व्यक्ति समान था।

जब भगवान राम वनवास के लिए अयोध्या से निकले, तब गंगा के तट पर उनकी भेंट निषादराज गुह से हुई। उन्होंने प्रेम से राम का स्वागत किया और नाव की व्यवस्था कर उन्हें पार पहुँचाया। राम ने उन्हें गले लगाकर अपना मित्र बना लिया। राम ने सच्चे मित्र की पहचान उसके मन से की, उसके रूप या वर्ण से नहीं।

वन में आगे बढ़ते हुए राम की भेंट शबरी से हुई। शबरी एक वृद्ध वनवासी महिला थीं। वे वर्षों से राम के आने की प्रतीक्षा कर रही थीं। जब राम उनके आश्रम पहुँचे, तो शबरी ने प्रेम से बेर खिलाए। वे हर बेर को चखकर

देखती थीं कि कहीं वह कड़वा तो नहीं। लक्ष्मण को यह अच्छा नहीं लगा, पर राम ने बड़े प्रेम से वे बेर खाए। उन्होंने कहा— "इन बेरों में शबरी का प्रेम मिला है।"

राम की मित्रता केवल मनुष्यों तक सीमित नहीं थी। घायल पक्षीराज जटायु ने माता सीता की रक्षा करते हुए अपने प्राणों की आहुति दे दी। राम ने जटायु को पिता के समान सम्मान दिया। वे दुखी हुए और बड़े आदर से उनका अंतिम संस्कार किया।

सुग्रीव और हनुमान से भी राम ने सच्ची मित्रता निभाई। सुग्रीव संकट में थे। राम ने उनकी सहायता की। बदले में सुग्रीव और वानर सेना ने सीता की खोज में राम का साथ दिया। हनुमान तो राम के ऐसे भक्त और मित्र बने, जिनका नाम आज भी श्रद्धा से लिया जाता है।

राम का जीवन हमें सिखाता है कि सच्चा मित्र वही होता है, जो सबके सुख-दुख में साथ खड़ा रहे। मित्रता में भेदभाव नहीं होना चाहिए। प्रेम, विश्वास, सम्मान और सहयोग ही मित्रता की सबसे बड़ी पहचान है।

इसीलिए भगवान राम को "सबके मित्र राम" कहा जाता है।

साहस और राष्ट्रभक्ति का प्रतीक-
छत्रपति शिवाजी

छत्रपति शिवाजी महाराज सच्चे देशभक्त, कुशल प्रशासक और महान योद्धा थे। उन्होंने राष्ट्र को मुगलों के चंगुल से आजाद करा कर मराठा साम्राज्य की नींव रखी थी। मुगलों के खिलाफ युद्ध का बिगुल बजाने वाले महाराज शिवाजी की गौरव और शौर्य गाथा का भारत में विशेष स्थान है। शिवाजी महाराज के शासन में महिलाओं के खिलाफ हिंसा को गंभीर दंड मिलता था। वे स्वयं महिलाओं का सम्मान करते थे। उन्होंने धर्मनिरपेक्षता और मजबूत नौसेना पर विशेष जोर दिया।उनकी सेना में देशभक्त मुस्लिम सैनिक भी थे। शिवाजी महाराज की युद्धनीति, जिसे 'गनिमी कावा' (छापामार युद्ध) कहा जाता है, ने उन्हें अजेय बनाया। उनका जीवन साहस और राष्ट्रभक्ति का प्रतीक है।

शिवाजी महाराज का जन्म 19 फरवरी 1630 को पुणे के पास शिवनेरी दुर्ग में माता जीजाबाई और पिता शाहजी भोसले के घर हुआ था। 1674 ई. में

रायगढ़ किले में उनका औपचारिक राज्याभिषेक हुआ और उन्हें 'छत्रपति' की उपाधि मिली। उन्होंने बहुत छोटी उम्र में ही मराठाओं को एकजुट कर एक स्वतंत्र मराठा साम्राज्य की नींव रखी। छत्रपति शिवाजी महाराज के व्यक्तित्व का निर्माण उनकी माता राजमाता जीजाबाई द्वारा दिए गए उच्च संस्कारों से हुआ। उन्होंने बचपन से ही शिवाजी के मन में शौर्य, धर्मपरायणता, राष्ट्रभक्ति और न्यायप्रियता के बीज बोए। जीजाबाई ने उन्हें रामायण-महाभारत की कहानियों के माध्यम से अन्याय के खिलाफ लड़ने और हिंदवी स्वराज्य की स्थापना करने की प्रेरणा दी,गुलामगिरी से मुक्त होकर स्वराज्य (स्वतंत्र राष्ट्र) की स्थापना करने का सपना दिखाया। उन्होंने शिवाजी को कम उम्र में ही तलवारबाजी, घुड़सवारी और युद्ध कौशल सिखाया, जिससे उनमें अदम्य साहस पैदा हुआ।ईमानदारी, न्याय और प्रजा के प्रति प्रेम जैसे नैतिक मूल्यों की शिक्षा दी, जिससे वे एक न्यायप्रिय शासक बने और हिंदू संस्कृति के प्रति अटूट आस्था और धर्म की रक्षा के संस्कार की शिक्षा दी जिससे वे एक साहसी और धर्मपरायण राजा बने। जीजाबाई न केवल उनकी माता थीं, बल्कि उनकी पहली गुरु और मार्गदर्शक थीं।

शिवाजी महाराज ने प्राचीन हिन्दू राजनीतिक प्रथाओं तथा दरबारी शिष्टाचारों को पुनर्जीवित किया और मराठी एवं संस्कृत को राजकाज की भाषा बनाया। वे भारतीय स्वाधीनता संग्राम में नायक के रूप में स्मरण किए जाने लगे। बाल गंगाधर तिलक ने राष्ट्रीयता की भावना के विकास के लिए शिवाजीराजे जन्मोत्सव की शुरुआत की। उनकी जन्म जयंती प्रतिवर्ष 19 फरवरी को मनाया जाता है। शिवाजी महाराज को उनकी वीरता और कुशल प्रशासन के लिए "हिंदू हृदय सम्राट" और भारत के गौरव के रूप में आज भी पूजा जाता है।

चंदैनी गोंदा : छत्तीसगढ़ का लोकमंच

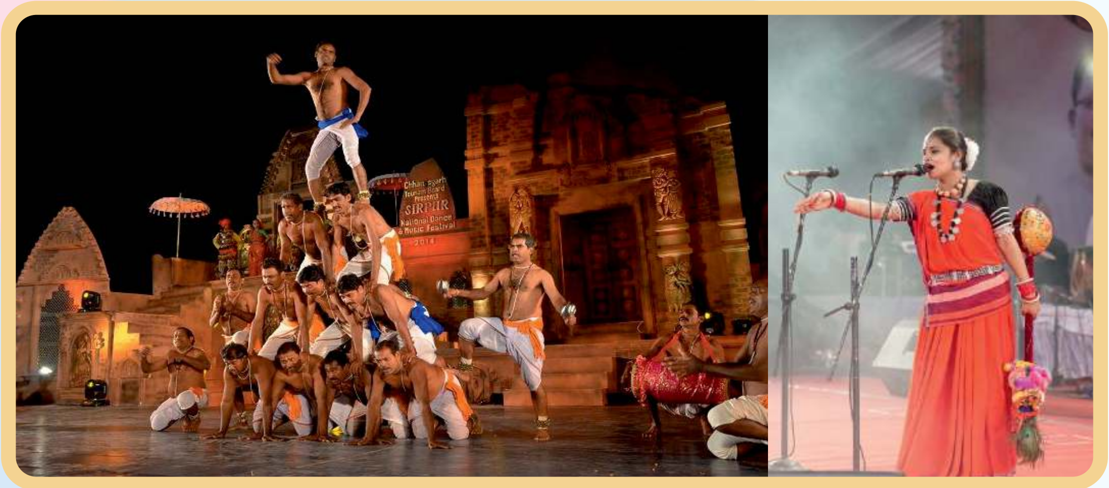

छत्तीसगढ़ की लोकसंस्कृति अत्यंत समृद्ध और विविधतापूर्ण है। प्रत्येक क्षेत्र की अपनी भाषा, वेशभूषा, लोकगीत, लोकनृत्य और लोकनाट्य होते हैं। लोकनाट्य लोकजीवन की भावनाओं, संघर्षों, खुशियों और परंपराओं को मंच पर जीवंत रूप में प्रस्तुत करने की कला है। इसका संबंध सीधे जनता से होता है। यह लोकसाहित्य की सबसे सजीव विधा है, इसमें मनोरंजन के साथ-साथ सामाजिक संदेश भी निहित रहता है।

छत्तीसगढ़ का ऐसा ही एक विशिष्ट और लोकप्रिय लोकमंच परंपरा है — "चंदैनी गोंदा"। इसमें गीत, संगीत, नृत्य, संवाद और अभिनय का सुंदर समन्वय होता है। रामलीला, नाचा, गम्मत, पंडवानी, स्वांग, भतरा नाट्य, माओपाटा और पुत्तलिका जैसी परंपराएँ छत्तीसगढ़ के विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित हैं।

'चंदैनी गोंदा' छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक यात्रा है। इसकी स्थापना स्वर्गीय रामचंद्र देशमुख द्वारा की गई थी।

इसमें गाँव के किसान, मज़दूर, खेत-खलिहान, पर्व-त्योहार, नदी-पहाड़ और ग्रामीण जीवन की सादगी को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है। चंदैनी गोंदा ने छत्तीसगढ़ की संस्कृति को राष्ट्रीय स्तर पर

पहचान दिलाई। यह समाज में स्वाभिमान, समानता और प्रेम का संदेश देता है।

छत्तीसगढ़ में पहले नाचा-गम्मत का प्रचलन था, किंतु समय के साथ एक ऐसे लोकमंच की आवश्यकता महसूस हुई, जो मनोरंजन के साथ-साथ समाज को दिशा भी दे सके। इसी आवश्यकता को देखते हुए चंदैनी गोंदा का जन्म हुआ।

चंदैनी गोंदा की आत्मा उसके लोकगीत और नृत्य हैं। इसमें ऋतुओं का वर्णन, प्रकृति की सुंदरता और छत्तीसगढ़ी जीवन का उत्सव देखने को मिलता है। नदी, पहाड़, खेत-खलिहान, फूल-फुलवारी और त्योहारों को गीतों की माला में पिरोया गया है। कुछ प्रसिद्ध गीत की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

- फुलगे चंदैनी गोंदा...
- मँय छत्तीसगढ़ अँव......
- मोर संग चलव रे.......
- गोदना गोदा ले ....
- छन्नर-छन्नर पैरी बाजय......
- तोला देखे रेहेंव गा.....
- तिपे चाहे भोमरा
- बखरी के तुमानार.....

इन गीतों में छत्तीसगढ़ी भाषा की मिठास और लोकभावना की गहराई झलकती है। चंदैनी गोंदा की सफलता में अनेक लोककलाकारों का योगदान रहा है।

स्वर्गीय खुमान साव के संगीत निर्देशन में यह लोकनाट्य नई ऊँचाइयों तक पहुँचा। लक्ष्मण मस्तुरिया, रामेश्वर वैष्णव, रवि शंकर शुक्ल, कोदू राम दलित, मुकुंद कौशल, पवन दीवान भैया लाल हेडाऊ, जैसे गीतकारों ने इसे जन-जन तक पहुँचाने में अपना योगदान दिया। इस लोकमंच की प्रस्तुतियों के ओजस्वी उद्घोषक डॉ. सुरेश देशमुख का नाम उल्लेखनीय है।

इन गीतों को गाने में कविता वासनिक, लक्ष्मण मस्तुरिया,केदार यादव, साधना यादव, भैया लाल हेडाऊ जैसे प्रमुख गायकों ने गीतों को अपने मधुर आवाज़ से जन-जन को लुभाया जिनसे प्रभावित होकर लोग दूर-दूर से देर रात तक कार्यक्रम देखने आते थे। चंदैनी गोंदा के सूत्रधार, गायक, गीतकार और कलाकारों ने अपने गायन, अभिनय और नृत्य से लोकसंस्कृति को जीवंत कर दिया।

इसने छत्तीसगढ़ में कई सांस्कृतिक संस्थाओं को जन्म दिया और लोककला के माध्यम से समाज सुधार की चेतना को मजबूत किया। चंदैनी गोंदा छत्तीसगढ़ के लोकनाट्य का जीवंत रूप है। यह लोकनाट्य हमें अपनी संस्कृति, भाषा और परंपराओं से जोड़ता है तथा नई पीढ़ी में सांस्कृतिक चेतना जाग्रत करता है।

इंद्रावती : बस्तर की जीवन-रेखा

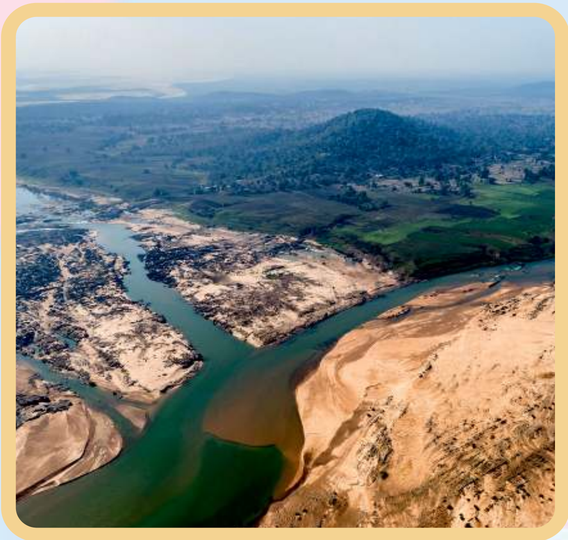

इंद्रावती नदी छत्तीसगढ़ की प्रमुख नदियों में से एक है यह बस्तर अंचल के लिए जीवनदायिनी मानी जाती है। यह नदी अपनी प्राकृतिक सुंदरता, सांस्कृतिक महत्त्व और आर्थिक उपयोगिता के कारण पूरे क्षेत्र में विशेष स्थान रखती है। इंद्रावती नदी का उद्गम ओड़िशा राज्य के कालाहांडी ज़िले की पहाड़ियों से होता है। वहाँ से निकलकर यह दक्षिण-पश्चिम दिशा में बहती हुई छत्तीसगढ़ के बस्तर ज़िले में प्रवेश करती है। बस्तर की पहाड़ियों और वनाच्छादित भूमि से होकर बहते हुए यह अनेक छोटी नदियों और नालों को अपने में समाहित करती जाती है, जिससे इसका प्रवाह और भी विशाल हो जाता है ।

बस्तर में बहते समय इंद्रावती नदी का सबसे सुंदर और प्रसिद्ध रूप चित्रकोट जलप्रपात के रूप में दिखाई देता है। यहाँ नदी ऊँचाई से विशाल वेग के साथ नीचे गिरती है, जिससे एक भव्य जलप्रपात बनता है। इसे भारत का नियाग्रा जलप्रपात भी कहा जाता है। यह स्थल पर्यटकों के आकर्षण का केंद्र है और बस्तर की पहचान बन चुका है।

बस्तर को सींचने के बाद इंद्रावती नदी आगे बढ़ते हुए आंध्र प्रदेश में प्रवेश करती है। वहाँ यह अंततः भारत की प्रमुख नदियों में से एक गोदावरी नदी में मिल जाती है। इस प्रकार इसका जल गोदावरी के माध्यम से बंगाल की खाड़ी तक पहुँचता है।

इंद्रावती नदी का धार्मिक और सांस्कृतिक महत्त्व भी बहुत अधिक है। बस्तर के आदिवासी समाज में इसे पवित्र नदी माना जाता है। इसके तटों पर

पूजा-पाठ, मेले और अनेक पारंपरिक अनुष्ठान होते हैं। लोग इसके जल को शुद्ध मानते हैं और धार्मिक कार्यों में इसका उपयोग करते हैं। इस नदी ने बस्तर की संस्कृति और जीवनशैली को गहराई से प्रभावित किया है।

आर्थिक दृष्टि से भी इंद्रावती नदी अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसके जल से बस्तर क्षेत्र में कृषि कार्य किया जाता है। धान, सब्जियाँ और अन्य फसलें इसी नदी पर निर्भर हैं। इसके अतिरिक्त मछली पालन, सिंचाई तथा पर्यटन जैसे अनेक व्यवसाय भी इस नदी से जुड़े हुए हैं। चित्रकोट जलप्रपात जैसे पर्यटन स्थल स्थानीय लोगों को रोजगार प्रदान करते हैं।

इस प्रकार इंद्रावती नदी केवल एक जलधारा नहीं, बल्कि बस्तर की जीवनरेखा है। यह वहाँ के लोगों के जीवन, संस्कृति और अर्थव्यवस्था को निरंतर सहारा देती है। इसलिए इसका संरक्षण और स्वच्छता बनाए रखना हम सभी का कर्तव्य है।

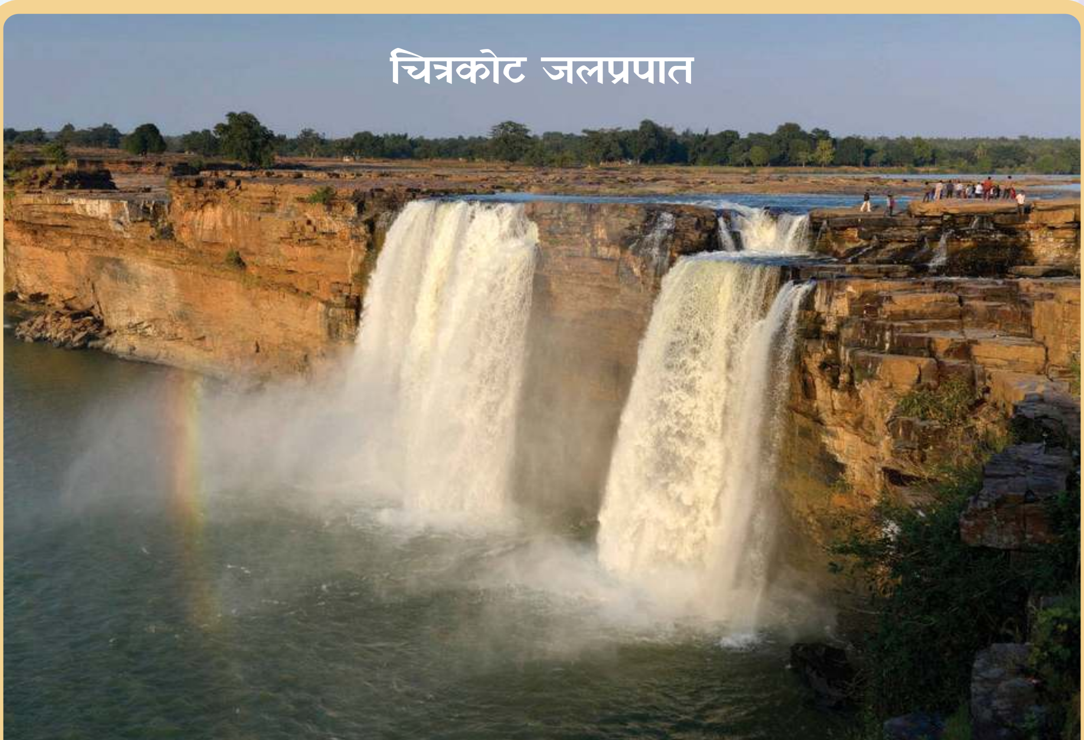

कपिलेश्वर मंदिर बालोद

छत्तीसगढ़ का बालोद ज़िला पुरातात्विक स्मारकों के लिए प्रसिद्ध है । ज़िले में कई ऐतिहासिक धरोहरें हैं, जो आज भी आकर्षण के केंद्र हैं । लोग इसके दर्शन करने आते हैं । इसे धरोहर के रूप में छत्तीसगढ़ शासन द्वारा संरक्षण प्राप्त है ।

इसी क्रम में छत्तीसगढ़ के बालोद शहर के नया पारा वार्ड-3 में कपिलेश्वर मंदिर समूह है । इस मंदिर समूह में भगवान शिव, देवी दुर्गा ,भगवान गणेश,भगवान कृष्ण, देवी संतोषी और राम जानकी को समर्पित छह मंदिर हैं । 11 वीं शताब्दी में स्थापित शिवलिंग और गणेश की मूर्ति यहाँ आज भी शोभायमान हैं। जन सेवा समिति के पदाधिकारी व सदस्य यहाँ ज़रूरी सेवा-सुविधाएँ जुटाते हैं। भगवान शंकर को समर्पित कपिलेश्वर मंदिर यहाँ सबसे बड़ा है। पूर्वाभिमुख इस मंदिर में गर्भ गृह मात्र है। मंदिर

का शिखर काफी ऊँचा है, दोनों तरफ भगवान गणेश की 6 फीट ऊँचीं प्रतिमाएँ स्थापित हैं। मंदिर के द्वार की दाईं-बाईं ओर कई देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ स्थापित हैं। यह मंदिर गजपति राजवंश के कपिलेंद्र देव के शासनकाल में बना बताया जाता है। कपिलेंद्र देव के शिलालेख और अन्य स्थापत्य कला के अवशेषों से पता चलता है कि मूल मंदिर 11 वीं शताब्दी के पहले का हो सकता है। शिव मंदिर के सामने का कुंड कभी सूखता नहीं। मंदिरों के पास कुंड या तालाब बनाने की परंपरा यहाँ भी देखने को मिलती है। कई योद्धाओं की प्रतिमाएँ स्तंभों पर स्थापित हैं । शिवलिंग, राजा रानी की मूर्तियाँ, 11 वीं से 14 वीं शताब्दी की हैं। प्रत्येक मंदिर के दरवाज़े के ऊपर गणेश की मूर्तियाँ बनी हैं। मंदिरों के शिखर भागों में नागों की आकृतियाँ अंकित हैं, जिससे अनुमान लगाया जाता है कि यहाँ भी स्थानीय नागवंशी राजाओं का शासन रहा होगा। उनके शासन काल में ही इन मंदिरों का निर्माण होना माना जाता है। यहाँ भगवान राम का मंदिर गर्भगृह और मंडप में विभक्त है। यहाँ का दूसरा मंदिर भगवान गणेश जी का है, इस मंदिर के गर्भ गृह में भगवान गणेश जी की 6 फीट ऊँची प्रतिमा स्थापित है। इस मंदिर का शिखर ऊपर की ओर सँकरा होता गया है ।

मंदिर का शिखर 'पीड़ा देउल' प्रकार में निर्मित है, मंदिरों के शिखर ढालदार, आयताकार, उभरे धँसे हुए हैं इस कारण इसे 'पीड़ा देउल' कहते हैं। छत्तीसगढ़ में कई प्रतिमाएँ मंदिर के मंडप में या खुले में प्राप्त होती हैं| लेकिन भगवान गणेश को समर्पित इस तरह के मंदिर कम ही मिलते हैं| लोक-मान्यता है कि कपिलेश्वर मंदिर छह मासी रात की अवधि में निर्मित मंदिर है।

बेटियाँ

सुंदर, कोमल कली बेटियाँ,
लगती कितनी भली बेटियाँ।
मत बाँधो पैरों में बंधन,
अंतरिक्ष को चली बेटियाँ।
अँधियारी राहों में हरदम,
दीपक बनकर, जली बेटियाँ।

पेड़ सरीखे, मन रखकर,
डाली-डाली, फली बेटियाँ।
बाधाओं से खूब जूझतीं,
दिखती हैं, हर गली बेटियाँ।
चाहे जितनी हो बाधाएँ,
संघर्षों में पली बेटियाँ।

भारतीय ज्ञान-संपदा व सांस्कृतिक धरोहर की प्रतिमूर्ति- पं. मदन मोहन मालवीय

'महामना' पं. मदन मोहन मालवीय विद्वान शिक्षाविद् और भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के नेता थे। उनका जन्म 25 दिसम्बर, 1861 ई0 (हिंदू पंचांग के अनुसार पौष कृष्ण अष्टमी, बुधवार, सं0 1918 विक्रम) को पिता पंडित बृजनाथ के घर प्रयागराज में हुआ था। उनकी माता श्रीमती मोना देवी, अत्यंत धर्मनिष्ठ एवं निर्मल ममतामयी देवी रही। मोदन मोहन बाल्यकाल से गुणी-निपुण एवं मेधावी रहे। उनकी प्रतिभा में अनेक चमत्कारी गुण रहे, जिनके कारण उन्होंने ऐसे सपने देखे जो भारत-निर्माण के साथ-साथ मानवता के लिए श्रेष्ठ आदर्श सिद्ध हुए। इन गुणों के कारण ही रविंद्रनाथ ठाकुर ने उन्हें 'महामना' कहा था। वे राष्ट्रीय हित के कई क्षेत्रों में जैसे- शिक्षा, स्वतंत्रता आंदोलन, सामाजिक विकास आदि से जुड़े रहे। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन उन्हें 'कर्मयोगी' कहते थे।

पं. मदन मोहन मालवीय जी ने अपने व्यवहार व चरित्र में हिंदू संस्कारों को भली-भांति आत्मसात् किया था। बचपन से ही उन्हें अपने घर में विद्वानों का सान्निध्य मिला। वे श्रीमद्भागवत जैसे आध्यात्मिक ग्रंथों का पाठ करते थे। उनकी प्रारंभिक शिक्षा 'धर्मज्ञानोपदेश' पाठशाला में पूरी हुई । इसके बाद उन्हें इलाहाबाद ज़िला स्कूल में भर्ती कराया गया।1879 में उन्होंने 'म्योर सेंट्रल कॉलेज' में दाख़िला लिया। मदनमोहन मालवीय ने अपनी आर्थिक स्थिति ख़राब होने के कारण हैरिसन कॉलेज के प्रिंसिपल द्वारा दिए गए छात्रवृत्ति की मदद से बी.ए. की पढ़ाई पूरी की। वे संस्कृत में एम.ए. करना चाहते थे, लेकिन अपनी ख़राब आर्थिक स्थिति के कारण ऐसा नहीं कर सके।

उन्होंने 1884 में गवर्नमेंट हाई स्कूल इलाहाबाद में सहायक शिक्षक के रूप में अपने जीवन की शुरुआत की । उन्होंने 15 वर्ष के किशोरवय में ही 'मकरंद' नाम से प्रारंभिक रचनाएँ लिखीं। जिससे वे अपने उपनाम 'मकरंद' से पहचाने जाते रहें।

पं. मदन मोहन मालवीय जी कई संस्थाओं के संस्थापक तथा कई पत्रिकाओं के संपादक रहे। इस रूप में वे हिंदू आदर्शों, सनातन धर्म तथा संस्कारों का पालन कर राष्ट्र-निर्माण की पहल की थी। इस दिशा में वे प्रयाग हिंदू सभा की स्थापना कर समसामयिक समस्याओं के संबंध में विचार व्यक्त करते रहे।

पं. मदन मोहन मालवीय एक उदारवादी नेता थे, जिन्होंने जीवन-भर हिंदू-मुस्लिम एकता के लिए काम किया। उन्होंने 1916 के लखनऊ समझौते के उस प्रावधान को ख़ारिज कर दिया, जिसमें मुसलमानों के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्र के प्रावधान को बरक़रार रखा गया था। मालवीय जी ने 1911 में शिक्षा और समाज सेवा के लिए अपना जीवन समर्पित कर क़ानून का पेशा छोड़ दिया। फिर भी, जब एक वक़ील के रूप में जरूरत पड़ी, तो उन्होंने चौरी-चौरा मामले में 155 स्वतंत्रता सेनानियों के लिए मुक़दमा लड़ा और उन्हें फाँसी की सज़ा से बचाया ।

मालवीय जी असहयोग आंदोलन के महत्त्वपूर्ण नेताओं में से एक थे। वे खिलाफ़त मुद्दे में काँग्रेस की भागीदारी के खिलाफ़ थे तथा इसे तुष्टीकरण और अवसरवादी राजनीति के रूप में देखते थे। उन्होंने साइमन कमीशन के खिलाफ़ विरोध प्रदर्शन में हिस्सा लिया और वे नेहरू, लाला लाजपत राय आदि नेताओं के साथ विरोध प्रदर्शन में शामिल हुए। सरोजिनी नायडू की गिरफ्तारी के बाद उन्हें काँग्रेस अध्यक्ष नियुक्त किया गया था। मदनमोहन मालवीय भारत की आज़ादी से पहले चार बार काँग्रेस अध्यक्ष चुने जाने वाले एकमात्र सदस्य थे, किंतु आंतरिक मतभेद के कारण उन्होंने काँग्रेस पार्टी

छोड़ दी और माधव श्रीहरि अणे के साथ मिलकर कॉंग्रेस नेशनलिस्ट पार्टी की स्थापना की। कॉंग्रेस नेशनलिस्ट पार्टी ने चुनाव लड़ा और 1934 के आम चुनावों में 12 सीटें जीतीं।

मदनमोहन मालवीय ने कैरिबियन में भारतीय गिरमिटिया श्रम प्रणाली को समाप्त करने में योगदान दिया। इसके तहत कैरिबियन क्षेत्र, अफ्रीका और दक्षिण पूर्व एशिया में ब्रिटिश उपनिवेशों में काम करने के लिए गिरमिटिया मजदूरों की भर्ती की जाती थी। यह बंधुआ मजदूरी की एक प्रणाली थी।

पं. मदनमोहन मालवीय द्वारा कई रचनात्मक कार्य किए गए। उन्होंने हरिद्वार के भीमगोड़ा में गंगा नदी पर बाँध बनाने के ब्रिटिश फैसले का विरोध करने के लिए 1905 में गंगा महासभा की स्थापना की। उन्हें हरिद्वार में हर की पौड़ी पर 'गंगा आरती' की परंपरा शुरू करने का श्रेय दिया जाता है। यह परंपरा आज भी जारी है। उन्हें 'मुंडकोपनिषद्' से लिए गए 'सत्यमेव जयते' शब्द को लोकप्रिय बनाने का श्रेय दिया जाता है। यह भारत का राष्ट्रीय आदर्श वाक्य है। उनके निरंतर प्रयासों के कारण, ब्रिटिश भारतीय अदालतों में देवनागरी को पेश किया गया। उन्होंने जीवनभर सांप्रदायिक सद्भाव खासकर हिंदू-मुस्लिम एकता के लिए काम किया। उनके भाषण उनके विचारों को दर्शाते हैं।

भारत के राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने भारतीय संसद में उनका एक आदमकद चित्र स्थापित किया। मदनमोहन मालवीय को 24 दिसंबर, 2014 को भारत के सर्वोच्च नागरिक सम्मान भारत रत्न से सम्मानित किया गया। 22 जनवरी, 2016 को वाराणसी और नई दिल्ली के बीच महामना एक्सप्रेस का शुभारंभ किया गया। 25 दिसम्बर, 2023 को प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने 'पं.मदनमोहन मालवीय सम्पूर्ण वाङ्मय' का लोकार्पण किया। हम सर्वधर्म-समभाव रखने वाले 'महामना' को नमन करते हैं।

रतनपुर का इतिहास

माता महामाया मंदिर,रतनपुर का प्रवेश द्वार

प्राचीन काल से ही छत्तीसगढ़ में अनेक राजवंशों का शासन रहा है। प्राचीन काल में छत्तीसगढ़ को दक्षिण कोसल के नाम से जाना जाता था। तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में दक्षिण कोसल का क्षेत्र पाटलिपुत्र के नंद शासकों तथा मौर्य शासकों के आधिपत्य में रहा। उसके बाद नल वंश के शासकों ने पाँचवीं शताब्दी तक शासन किया । ईसा की पाँचवीं शताब्दी के मध्य में नलवंश की सत्ता समाप्त कर यहाँ शरभपुरिया वंश ने अपना शासन स्थापित किया।

सातवीं शताब्दी के प्रारंभ में पांडुवंशियों ने श्रीपुर को अपनी राजधानी बनाया, जिसे वर्तमान में सिरपुर के नाम से जाना जाता है । इस वंश के सबसे प्रतापी राजा महाशिवगुप्त के शासन काल को प्राचीन छत्तीसगढ़ का स्वर्ण युग माना जाता है। महाशिवगुप्त की मृत्यु के पश्चात् सोमवंश के राजाओं ने राज किया। सोमवंश का शासनकाल आठवीं शताब्दी के मध्य से दसवीं शताब्दी तक रहा।

1000 ईसा के लगभग कलचुरि राजपुत्र कलिंगराज ने सोमवंशी शासकों को परास्त कर दक्षिण कोसल पर अधिकार कर लिया एवं तुम्माण (जो वर्तमान में बिलासपुर ज़िले में तुम्मान के नाम से जाना जाता है) को अपनी राजधानी बनाया। इसके शासक रत्नदेव ने तुम्माण के पास रत्नपुर नामक नगर बनाकर वहाँ अपनी राजधानी स्थापित की। ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य से तेरहवीं शताब्दी अंत तक कलचुरि शासकों ने दक्षिण कोसल पर एकछत्र राज किया। उनका शासन काल काफ़ी समृद्ध, संपन्न और सुदृढ़ रहा।

चौदहवीं शताब्दी में छत्तीसगढ़ का कलचुरि साम्राज्य दो भागों में बँट गया। एक भाग ने रतनपुर का राज्य सँभाला एवं दूसरे ने रायपुर में अपनी राजधानी स्थापित की। कलचुरियों ने लगभग सवा दो सौ वर्षों तक शासन किया। प्रशासन के अतिरिक्त सभ्यता, व्यापार, व्यवसाय एवं कला के क्षेत्र में प्रारंभिक कलचुरियों का विशेष योगदान रहा। रतनपुर, पाली, तुम्माण, मल्हार, नारायणपुर, पंडरिया, शिवरीनारायण के मंदिर उस काल के स्थापत्य-कला के उत्कृष्ट नमूने हैं।

कलचुरियों का शासन दो भागों में बँट जाने के कारण स्वाभाविक रूप से कमज़ोर हो गया। सोलहवीं शताब्दी में इन्हें मुग़ल साम्राज्य की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। मराठों ने सन् 1741 ईसवी के आस-पास रायपुर क्षेत्र को अपने अधीन कर लिया।

1741 ईसवी में ही नागपुर के भोंसला शासक रघुजी प्रथम की मृत्यु के उपरांत उनके पुत्र बिंबाजी भोंसले ने अपनी सत्ता सँभाली। नागपुर के राजा के अधीन रहते हुए भी उन्होंने रतनपुर में अपना पृथक शासन स्थापित कर लिया था। मराठा शासन स्थापित होने तक छत्तीसगढ़ की

आर्थिक व्यवस्था पूरी तरह गिर चुकी थी। बिंबाजी के कठोर शासन प्रबंध एवं अत्याचार के कारण यह और भी दयनीय हो गई। बिंबाजी उत्तराधिकारी, नागपुर की राजनीति में व्यस्त रहे इसके कारण इस क्षेत्र की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दे पाते थे, इसलिए उन्होंने सूबा (गवर्नर) की नियुक्ति की। इस समय तक प्रशासन का मुख्यालय रत्नपुर ही रहा।

रघुजी द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् अप्पा साहब ने अँग्रेज़ों के साथ गुप्त संधि कर गद्दी पर कब्ज़ा कर लिया, जिसके कारण छत्तीसगढ़ सहित नागपुर प्रांत अँग्रेज़ों के अधीन हो गया। अप्पा साहब ने अँग्रेजों के नियंत्रण से मुक्त होने का प्रयास किया, परंतु युद्ध में पराजय के कारण उन्हें एक नई संधि के लिए बाध्य होना पड़ा, जिसके अनुसार 1818 में संपूर्ण प्रशासन अँग्रेज़ों के हाथों में आ गया। ब्रिटिश शासन का पहला सुप्रिटेंडेंट कैप्टन एडमंड्स था। 1861 में सेंट्रल प्राविंसेंस का गठन होने पर छत्तीसगढ़ में अँग्रेज़ों द्वारा प्रशासन का प्रारंभ हुआ। इस तरह सदियों के उतार-चढ़ाव देखते हुए भी छत्तीसगढ़ की मिट्टी ने अपनी सादगी और सरलता खोने नहीं दी।

बैगा जनजाति

बैगा जनजाति छत्तीसगढ़ की एक प्रमुख आदिम जनजाति है, जिसे भारत सरकार द्वारा विशेष पिछड़ी जनजाति (PVTG) के रूप में मान्यता प्राप्त है। यह जनजाति मुख्य रूप से छत्तीसगढ़ के वनाच्छादित और पहाड़ी क्षेत्रों में निवास करती है। इनकी अधिक संख्या कबीरधाम, बिलासपुर एवं गौरेला-पेंड्रा-मरवाही ज़िले में है। बैगा लोग प्रायः जंगलों के समीप छोटे-छोटे गाँवों में रहते हैं और उनका जीवन प्रकृति के साथ गहरे जुड़ाव का उदाहरण प्रस्तुत करता है। वे स्वयं को जंगल का रक्षक मानते हैं और धरती को 'माई' कहकर संबोधित करते हैं।

परंपरागत रूप से बैगा समुदाय 'बेवर' या झूम खेती करता था, जिसमें वे जंगल की भूमि को साफ कर कुछ वर्षों तक खेती करते और फिर भूमि को विश्राम देकर दूसरी जगह चले जाते थे। समय के साथ वन कानूनों और प्रशासनिक नीतियों के कारण उन्होंने स्थायी कृषि, मजदूरी और वनोपज संग्रह को जीविका के रूप में अपनाया। महुआ, तेंदूपत्ता, शहद, चिरौंजी और अन्य जंगली उत्पाद इनके जीवनयापन के प्रमुख साधन हैं। इनके पास जड़ी-बूटियों का पारंपरिक ज्ञान अत्यंत समृद्ध है। समुदाय में 'बैगा' या

'ओझा' को विशेष सम्मान प्राप्त होता है, जो जड़ी-बूटियों से उपचार करता है और धार्मिक अनुष्ठानों का संचालन करता है।

बैगा जनजाति की संस्कृति अत्यंत सरल, प्रकृति-आधारित और सामुदायिक भावना से ओत-प्रोत है। इनके प्रमुख त्योहारों में करमा, जितिया और नवाखाई शामिल हैं। करमा नृत्य इनके उत्सवों का मुख्य आकर्षण होता है, जिसमें स्त्री-पुरुष मिलकर पारंपरिक गीतों की धुन पर नृत्य करते हैं। बैगा महिलाओं की एक विशिष्ट पहचान उनका पारंपरिक गोदना (टैटू) है, जिसे वे जीवनभर धारण करती हैं। गोदना उनके लिए सौंदर्य, सामाजिक पहचान और धार्मिक आस्था का प्रतीक है। उनकी वेशभूषा सादगीपूर्ण होती है; पुरुष सामान्यतः धोती पहनते हैं, जबकि महिलाएँ पारंपरिक शैली में साड़ी धारण करती हैं।

सामाजिक व्यवस्था में परिवार और गाँव की पंचायत का महत्वपूर्ण स्थान है। विवाह, जन्म और मृत्यु से संबंधित रीति-रिवाज पारंपरिक ढंग से निभाए जाते हैं और सामुदायिक सहभागिता इनका मुख्य आधार होती है।

बैगा समाज में बुजुर्गों को विशेष सम्मान दिया जाता है और उनके निर्णयों का पालन किया जाता है। आधुनिक शिक्षा और सरकारी योजनाओं के प्रभाव से इनके जीवन में परिवर्तन अवश्य आया है, किंतु आज भी वे अपनी परंपराओं, लोकगीतों, नृत्यों और प्रकृति-आधारित जीवनशैली को सँजोए हुए हैं। छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक विविधता में बैगा जनजाति का महत्वपूर्ण स्थान है, और उनकी परंपराओं तथा पारंपरिक ज्ञान को संरक्षित करना समाज की सामूहिक ज़िम्मेदारी है।

कोरबा ज़िले के प्रमुख पर्यटन स्थल

कोरबा ज़िला केवल औद्योगिक और खनिज केंद्र नहीं है, बल्कि यह प्राकृतिक सौंदर्य, जलप्रपात, झीलों, जंगलों और सांस्कृतिक धरोहर के लिए भी जाना जाता है। ज़िले में पर्यटक स्थलों की विविधता इसे छत्तीसगढ़ के आकर्षक पर्यटन स्थलों में से एक बनाती है। यहाँ की हरियाली, नदियाँ, झरने और झीलें न केवल देखने में सुंदर हैं, बल्कि ये स्थानीय जीवन और पारंपरिक संस्कृति से भी जुड़ी हुई हैं।

प्रमुख पर्यटन स्थल

1. गोल्डन आइलैंड (Golden Island)

गोल्डन आइलैंड एक प्राकृतिक जल निकाय और आइलैंड है, जो हरे-भरे जंगलों और तालाबों के बीच स्थित है। यह स्थान पिकनिक, फोटोग्राफी और नदी के किनारे समय बिताने के लिए प्रसिद्ध है। गोल्डन आइलैंड की प्राकृतिक सुंदरता और शांत वातावरण इसे शहर की हलचल से दूर एक मनोरम स्थल बनाते हैं। इसे छत्तीसगढ़ का मॉरीशस भी कहा जाता हैं।

2. केंदई जलप्रपात (Kendai Waterfall)

केंदई जलप्रपात कोरबा ज़िले का एक प्रमुख प्राकृतिक आकर्षण है। यह जलप्रपात घने जंगलों और पर्वतीय क्षेत्र में स्थित है, जिससे यहाँ के आसपास का क्षेत्र हमेशा हरियाली और ठंडे वातावरण से भरपूर रहता है। जलप्रपात के पास पिकनिक कई स्थल बने हुए हैं। यह स्थान पर्यावरण प्रेमियों और फोटोग्राफरों के लिए आदर्श है।

3. बाँगो डैम (Bango Dam)

बाँगो डैम एक कृत्रिम जलाशय और पर्यटन स्थल है। यहाँ जलक्रीड़ा, बोटिंग और प्राकृतिक दृश्यों का आनंद लिया जा सकता है। डैम के किनारे बने पार्क और प्राकृतिक स्थल परिवार और बच्चों के लिए आकर्षण के केंद्र हैं। बाँगो डैम का क्षेत्र सूर्यास्त और पक्षियों के दृश्यावलोकन के लिए प्रसिद्ध है।

4. सतरेंगा (Satrenga)

सतरेंगा को छत्तीसगढ़ का 'पर्यटन हब' और 'हिल स्टेशन' कहा जा सकता है। यह स्थल झील, पर्वत और हरियाली से घिरा हुआ है। सतरेंगा में पर्यटक बोटिंग, कैपिंग, ट्रेकिंग और वाटर स्पोर्ट्स का आनंद ले सकते हैं। यह स्थल न केवल प्राकृतिक सुंदरता, बल्कि शांत और मनोरम वातावरण के लिए भी जाना जाता है।

5. रानी झरना (Rani Waterfall)

रानी झरना यहाँ का एक प्राकृतिक जलप्रपात है, जो गर्मियों में विशेष रूप से पर्यटकों को आकर्षित करता है। झरने के आसपास का जंगल वन्यजीव और पक्षियों की विविधता से भरा हुआ है। रानी झरना क्षेत्र पिकनिक और ट्रैकिंग के लिए आदर्श स्थल है।

6. बुका (Buka)

बुका क्षेत्र अपने घने जंगलों और प्राकृतिक वातावरण के लिए प्रसिद्ध

है। यहाँ पर्यटक पक्षी देखना, ट्रैकिंग और वन्यजीवन का आनंद ले सकते हैं। बुका का शांत वातावरण और प्राकृतिक हरियाली इसे पर्यावरण प्रेमियों के लिए आदर्श स्थल बनाती है।

७. चैतुरगढ़

चैतुरगढ़ को 'लाफागढ़' के नाम से भी जाना जाता है। कोरबा ज़िला मुख्यालय से 70 कि°मी° दूर पाली के पास 3060 मी. ऊँची पहाड़ी पर स्थित है। इसका निर्माण राजा पृथ्वी देव ने कराया था। यह एक क़िले जैसा लगता है। इसमें तीन प्रवेश द्वार हैं। इन प्रवेश द्वारों के नाम मेनका, हुमकारा और सिम्हाद्वार हैं।

चैतुरगढ़ का क्षेत्रफल 5 वर्ग किलोमीटर है, और इसमें पाँच तालाब हैं। इन पाँच तालाबों में तीन तालाब सदाबहार हैं, जो पूरे वर्ष जल से भरे होते हैं। चैतुरगढ़ में महिषासुर मर्दिनी मंदिर है। मंदिर के गर्भ में महिषासुर मर्दिनी की प्रतिमा स्थापित की गई है, जिसके बारह हाथ हैं। नवरात्र में यहाँ विशेष पूजा का आयोजन किया जाता है। स्थानीय निवासी इस पूजा में बड़ी श्रद्धा से भाग लेते हैं।

मंदिर के पास खूबसूरत शंकर गुफा भी है, जो लगभग 25 फीट लंबी है। गुफा का प्रवेश-द्वार बहुत छोटा है। इसलिए पर्यटकों को गुफा में प्रवेश करने के लिए काफी मशक्कत करनी पड़ती है। मंदिर और गुफा देखने के अलावा पर्यटक इसकी प्राकृतिक सुंदरता की झलकियाँ भी देख सकते हैं। पर्यटक यहाँ वन्य पशु-पक्षियों को देख सकते हैं।

कोरबा के पर्यटन स्थल न केवल दृश्यात्मक सुंदरता के लिए है, बल्कि जैवविविधता, जल-संरक्षण और पारिस्थितिकी संतुलन के लिए भी महत्वपूर्ण है। सतत पर्यटन और प्राकृतिक संरक्षण से वन्यजीव पक्षी और वनस्पति सुरक्षित रहती है। स्थानीय समुदायों को रोज़गार और सांस्कृतिक पहचान भी इन स्थलों में मिलती है।

नमन का पर्व - स्वतंत्रता दिवस

स्कूल में पंद्रह अगस्त की तैयारियाँ जोरों पर है। बड़ी कक्षा के बच्चे उत्साहपूर्वक अपने-अपने दायित्व का निर्वाह कर रहे थे। कोई तोरण बाँध रहा था, कोई प्रांगण की सफाई कर रहा था। सभी किसी न किसी काम में लगे हुए थे,लेकिन यह पंद्रह अगस्त का त्योहार छोटे बच्चों के लिए एक पहेली था।

मोहन अभी छोटा था। वह दूसरी कक्षा में पढ़ता था। वह बड़े बच्चों के साथ दौड़-दौड़ कर सहायता करने की कोशिश कर रहा था। वास्तव में उसे इस भाग-दौड़ में उत्सव के कारण को समझना था।

मोहन का बड़ा भाई बलराम आठवीं कक्षा में पढ़ता था। वह उसके पास जाता और बार-बार पूछता- "भैया यह कौन-सा त्योहार है?"

बलराम एक शब्द में कह देता- "पंद्रह अगस्त।" लेकिन मोहन उसके उत्तर से संतुष्ट नहीं होता। वह फिर पूछता- " यह पंद्रह अगस्त किसका त्योहार है?"

"हम सबका।"

"हम सबका, क्या मेरे दोस्त अब्दुल का भी?"

"हाँ, अब्दुल, मैरी, जॉर्ज, रमेश, सुरेश, सबका।"

"भैया, क्या हम कल स्कूल आएँगे?"

"हाँ, साफ-सुथरे कपड़े पहनकर।

"क्या हम सभी को कल मिठाइयाँ मिलेंगी?" मोहन ने उत्सुकता से पूछा।

" हाँ यार, बस कर मेरा दिमाग मत खा। अभी बहुत काम बाकी हैं।"

बलराम द्वारा इस प्रकार झल्लाकर बोलने पर मोहन चुप हो गया। पर उसकी जिज्ञासा शांत नहीं हुई थी। उसने दबी आवाज़ में कहा- " भैया एक बात पूछूँ।

"हाँ, चल पूछ ले।"

"ये पंद्रह अगस्त क्यों मनाते हैं?"

" हाँ, यह अच्छा प्रश्न है। लेकिन इसका उत्तर मैं अभी नहीं दूँगा। स्कूल की छुट्टी के बाद जब घर जाएँगे न, तब घर में आराम से जवाब दूँगा। अभी यहाँ का काम निपटाने दे।"

मोहन झटपट वहाँ से दूर अपने दोस्तों के साथ खेलने चला गया।

आधी छुट्टी की घंटी बज गई। सभी बच्चे अपना काम छोड़कर कक्षा की ओर लौट आए। तभी प्रधानाध्यापक ने कहा- " कक्षा पहली से पाँचवीं तक के बच्चों की छुट्टी, वे घर चले जाएँ, कल सभी साफ-सुथरे कपड़े पहनकर सात बजे शाला आएँगे। माध्यमिक शाला के बच्चे बचे हुए काम पूरा करने के बाद एक साथ घर जाएँगे। अभी कोई नहीं जाएगा।"

बलराम पाँच बजे घर पहुँचा तो मोहन दरवाजे पर ही मिल गया। "भैया शाम हो गई?" मोहन ने कहा।

बलराम ने मुस्काते हुए कहा- "हाँ यार, मुझे हाथ-पैर धोने देगा या फिर...?"

जैसे ही बलराम हाथ-पैर धोकर अपने कमरे में पहुँचा, पीछे-पीछे मोहन भी पहुँच गया। बलराम ने एक लंबी साँस ली, फिर बोला- "पंद्रह अगस्त हमारा राष्ट्रीय त्योहार है। इसे हम सब बिना किसी जाति-धर्म, पंथ, समुदाय के भेद किए मिलकर मनाते हैं। क्योंकि इसी दिन 15 अगस्त 1947

को हमारा देश अँग्रेज़ों के बंधन से मुक्त हुआ था, अर्थात् हम पराधीनता की बेड़ी काटकर स्वतंत्र हुए थे। इस स्वतंत्रता को पाने के लिए हमारे लाखों भारतीयों ने अपना सब कुछ न्योछावर कर दिया । महत्मा गाँधी की अगुवाई में स्वतंत्रता के लिए लंबी लड़ाई लड़ी गईं। अनेक देश भक्त हँसते-हँसते फाँसी के फंदे में झूल गए, तो कइयों को कालापानी की सजा काटनी पड़ी। इन्हीं बलिदानियों के प्रति कृतज्ञता का भाव व्यक्त करने के लिए यह त्योहार मनाया जाता है ।"

तभी कुछ खाने की सामाग्री लेकर उसकी माँ कमरे में पहुँच गई। उसने बलराम की बातों के बीच अपनी बात जोड़ते हुए कहा- इतना ही नहीं हमें इसके पूर्व का भी इतिहास जानना चाहिए।

"इतिहास? कौन-इतिहास माँ?" बलराम ने कहा ।

"भारत का इतिहास, भारत का समृद्ध इतिहास। भारत का प्राचीन इतिहास अत्यंत समृद्ध है। इसे हमें जानना चाहिए।"

"बताओ न माँ?" मोहन ने कहा

"एक समय में भारत को सोने की चिड़िया कहा जाता था। ऐसा कहा जाता था कि भारत में दूध की नदियाँ बहती थीं ।"

"वाह, कितना मज़ा आता रहा होगा। जब चाहो, नदी से दूध लो और पी जाओ, गटागट।" मोहन ने उल्लासित होते हुए कहा ।

मोहन की बातों को सुनकर सभी को हँसी आ गई।

माँ ने कहा- "इसका मतलब है, भारत एक समृद्ध राष्ट्र था। शिक्षा, चिकित्सा, व्यापार आदि के क्षेत्र में अग्रगण्य था। इसे विश्व गुरु कहा जाता था। लेकिन लगातार विदेशी आक्रमणों ने भारत को कमज़ोर कर दिया। डच, पुर्तगाल, मुग़ल, आदि विदेशी आए तथा सबने शासन किया। अँग्रेज़ों ने यहाँ लंबे समय तक राज किया। वे भारत की संपदाओं को अपने देश ले गए। यहाँ की शिक्षा और संस्कृति को विकृत किया। इसी कारण आज स्वतंत्र होने के बाद भी हम अपने सांस्कृतिक पहचान के लिए संघर्ष कर रहे हैं।"

"क्या भारत की सैन्य शक्ति कमतर थी माँ।" यह प्रश्न बलराम की ओर से था।

नहीं, भारत की सैन्य शक्ति कमज़ोर नही थी। यहाँ के हिंदू राजा आपस में बँटे हुए थे। वे आपसी रंजिशों और लड़ाइयों में अपनी ताक़त खो रहे थे। इसी का फायदा विदेशियों ने उठाया। अँग्रेज़ तो व्यापार के बहाने हमारे यहाँ आए थे। धीरे-धीरे उन्होंने अपनी ताकत बढ़ाई और देश पर कब्जा कर लिया। अँग्रेज़ भारतीयों पर अत्याचार करने लगे। उनके अत्याचार से पीड़ित भारतीय आंदोलित हुए और स्वतंत्रता आंदोलन के लिए निकल पड़े। बड़ी लंबी लड़ाई लड़ी गई। आज हम स्वतंत्र हैं, लेकिन आज भी बाहरी शक्तियाँ भारत को कमज़ोर करने में लगी हुई हैं। कुछ तो देश के भीतर भी हैं, जो नहीं चाहते हमारा देश विकसित राष्ट्र बने। अब हम सब भारतीयों का दायित्व है कि हम सचेत रहें, जिससे हमारी स्वतंत्रता अक्षुण्ण रहें।

मोहन माँ की बातों को बड़े ध्यान से सुन रहा था, न जाने वह कितना समझा, लेकिन उसके चेहरे की चमक बता रही थी कि यह त्योहार दूसरे त्योहारों से अलग है और उसे मज़ा आएगा।

मोहन जोर से चिल्लाया- "दीदी, मेरा कपड़ा प्रेस कर देना। कल पंद्रह अगस्त है। और वह खेलने के लिए चला गया।

भगवान बिरसा मुंडा

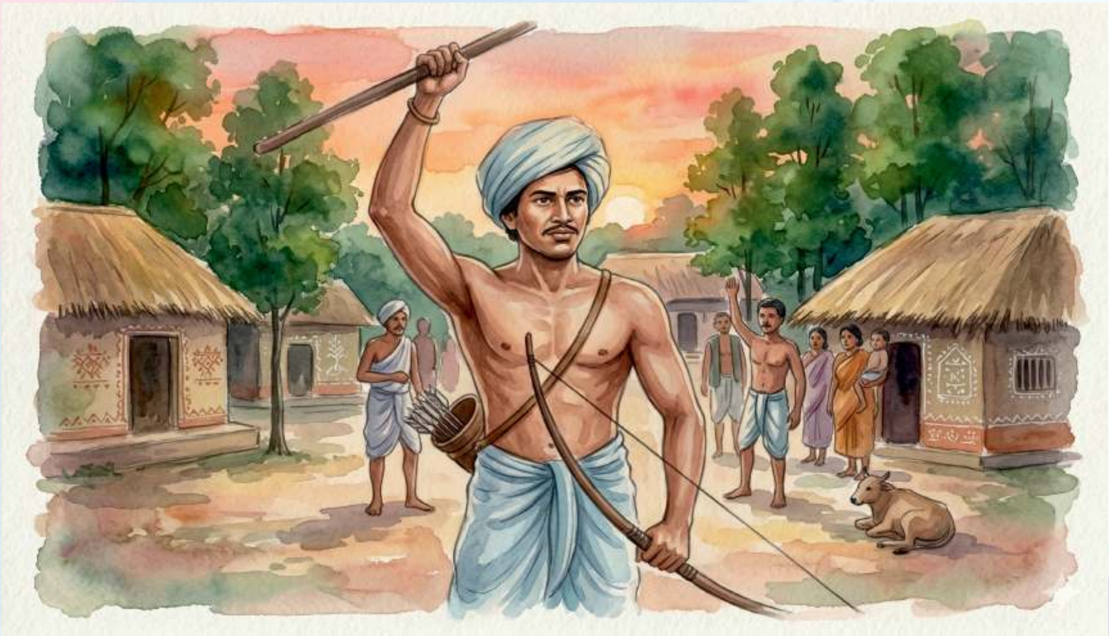

प्राचीनकाल में भारत की पुण्य भूमि पर अनेक महापुरुष, समाज सुधारक, ऋषि मुनि, वैज्ञानिक, क्रांतिकारी, योद्धा अवतरित हुए ,जिन्होंने अपने जप, तप व शौर्य से जनजाति समाज को प्रेरित कर उनका मार्गदर्शन किया। ऐसे ही एक महान क्रांतिकारी जनजाति योद्धा थे- बिरसा मुंडा। उन्होंने जनजातीय समाज के लिए जल, जंगल, धर्म एवं संस्कृति से संबंधित अधिकारों की रक्षा के लिए अँग्रेज़ी शासन के विरुद्ध संघर्ष किया। वे जनजातियों के लिए आशा और जागृति के प्रतीक माने जाते हैं। उन्होंने जल, जंगल और जमीन के लिए लड़ाई लड़कर अँग्रेज़ों के बगावत के खिलाफ 'उलगुलान' आंदोलन किया।

बिरसा मुंडा का जन्म 15 नवंबर 1875 को वर्तमान झारखंड राज्य के खूँटी ज़िले के उलिहातू गाँव में हुआ था। वे मुंडा जनजाति से संबंध रखते थे। उनके पिता का नाम सुगना मुंडा और माता का नाम करमी मुंडा था। उनका जन्म बृहस्पतिवार को होने के कारण उनका नाम बिरसा रखा गया। बचपन से ही बिरसा मुंडा में साहस, नेतृत्व और समाज के प्रति जागरूकता के गुण दिखाई देते थे।

उस समय जनजातीय समाज पर अँग्रेज़ी शासन और ज़मींदारों का अत्याचार बढ़ रहा था। जनजातियों से उनकी जमीन छीनी जा रही थी और उन पर भारी कर लगाए जाते थे। बिरसा मुंडा ने इन अन्यायों के विरुद्ध आवाज उठाई। उन्होंने जनजातियों को संगठित किया और उन्हें अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा दी।

बिरसा मुंडा ने समाज सुधार का भी कार्य किया। उन्होंने अंधविश्वास, नशाखोरी और सामाजिक बुराइयों को दूर करने का संदेश दिया। लोग उन्हें 'धरती आबा' (धरती के पिता) कहकर सम्मान देते थे। भगवान बिरसा मुंडा ने अपने धर्म एवं संस्कृति की रक्षा के लिए अपने जीवन को समर्पित किया। उन्होंने ईसाई धर्म की ओर जाने वाले अर्थात धर्म-परिवर्तन को रोकने के लिए व मूल धर्म में वापिस लाने 'बिरसाइयत धर्म' की स्थापना की तथा मुंडाओं के पूर्वजों की स्मृति जगाने के उद्देश्य से पवित्र स्थानों की यात्राएँ कीं।

अँग्रेज़ सरकार ने उनके आंदोलन को दबाने का प्रयास किया और अंततः उन्हें गिरफ़्तार कर लिया। उन्हें जंजीरों में जेल में अकेले रखकर भयंकर यातनाएँ दी गईं, परंतु वे बिरसा का मनोबल नहीं तोड़ सके। अंत में 9 जून 1900 को राँची जेल में उन्हें सुबह खून की उल्टी हुई और अंततः मात्र 25 वर्ष की आयु में उनका निधन हो गया। उनका जीवन भले ही छोटा था, परंतु उनका योगदान बहुत महान था।

बिरसा मुंडा के संघर्ष के परिणामस्वरूप जनजातियों के अधिकारों को मान्यता मिली और भूमि संबंधी कानूनों में सुधार हुआ। आज भी उनका नाम साहस, बलिदान और न्याय के लिए संघर्ष का प्रतीक है। भगवान बिरसा मुंडा के योगदान को देखते हुए उनकी जयंती को भारत सरकार द्वारा वर्ष 2021 से जनजाति गौरव दिवस के रूप में मनाने की घोषणा की गई।

छत्तीसगढ़ का राजकीय पशु वनभैंसा

पिछली गर्मी की छुट्टियों में मुझे अपने परिवार के साथ छत्तीसगढ़ के उदंती-सीतानदी वन्य अभ्यारण्य जाने का अवसर मिला। चारों ओर फैले हरे-भरे जंगल, ऊँचे-ऊँचे साल के पेड़, चहचहाते पक्षी और कल-कल बहती नदियाँ मन को आनंद से भर रही थीं। मेरे साथ बारह वर्षीय पुत्र उत्कर्ष और सोलह वर्षीय पुत्री उर्वशी भी थी। दोनों प्रकृति की सुंदरता देखकर बहुत खुश थे, लेकिन उत्कर्ष के मन मे एक ही सवाल बार-बार उठ रहा था- 'पिताजी! क्या हमें वनभैंसा देखने को मिलेगा?' दरअसल हमारी यात्रा का मुख्य उद्देश्य भी यही था, छत्तीसगढ़ के राजकीय पशु को देखना और उसके बारे में अधिक से अधिक जानना।

जैसे ही हम वन विभाग के जाँच नाका पर पहुँचे। वहाँ तैनात वन रक्षक श्री मंगेश कुमार हमारे मार्गदर्शक बने। उन्होंने उत्कर्ष की उत्सुकता देखकर मुस्कराते हुए कहा- "बच्चो, यह वही जंगल है, जहाँ कभी सैकड़ों वनभैंसे रहते थे।" यह सुनकर मैं भी चौंक गया और पूछ बैठा-सैकड़ों! अब वे कहाँ गए? वनरक्षक ने गंभीर स्वर में कहा "अब बहुत कम रह गए हैं, इसलिए इन्हें बचाना बहुत ज़रूरी है।"

थोड़ी दूर चलने पर हमें घास का एक बड़ा मैदान दिखाई दिया। दूर एक बड़ा काला जानवर शांति से घास चर रहा था।

वनरक्षक-"देखो बच्चो, यही है वनभैंसा।"

उत्कर्ष ख़ुशी से बोला-"वनभैंसा" उसकी आँखें खुशी से चमक उठीं। वनभैंसा छत्तीसगढ़ का राजकीय पशु है।

वनरक्षक-"बच्चो, इसका वैज्ञानिक नाम Bubalus Arneeहै और अँग्रेज़ी में इसे Wild Buffalo कहते हैं।

उत्कर्ष ने उत्सुकता से पूछा-"वाह! यह तो बहुत बड़ा है! क्या यह घरेलू भैंसे से अलग होता है?"

वनरक्षक-"हाँ बेटे! यह घरेलू भैंसे से कहीं बड़ा और ताक़तवर होता है| इसकी ऊँचाई लगभग 150 से 190 सेंटीमीटर होती है। इसका वजन 800 से 1200 किलोग्राम तक होता है।

उत्कर्ष ने फिर पूछा-"इसके सींग इतने बड़े क्यों होते हैं?"

वनरक्षक- "इसके लंबे, मोटे और पीछे की ओर मुड़े हुए सींग ही उसकी सबसे बड़ी पहचान हैं। इसके सींगों का फैलाव लगभग दो मीटर तक हो सकता है। नर वनभैंसे के सींग मादा से बड़े होते हैं।"

उत्कर्ष ने पूछा-"अंकल, इसकी कुछ और विशेषताएँ बताइए?"

वनरक्षक- "तो सुनो बच्चो,इसका शरीर मजबूत, चौड़ा और भारी होता है। गरदन मोटी और छाती चौड़ी होती है, जिससे वह तेज दौड़ सकता है और अपनी रक्षा कर सकता है। इसकी त्वचा मोटी होती है। शरीर पर बाल कम होते हैं और रंग गहरा काला या स्लेटी काला होता है। यह सब उसे जंगल के कठिन परिस्थितियों से बचाता है।" चलते-चलते हमने सूखे तालाब और कटी हुई पेड़-पौधों की झाड़ियाँ देखीं। उत्कर्ष उदास होकर बोला- "अगर ऐसे ही जंगल में पेड़-पौधे को काटते रहेंगे, तो न जंगल रहेंगे न जल मिलेगा? है न पिताजी!

उत्कर्ष की बात सुनकर मैंने वनरक्षक की ओर देखा।

वनरक्षक ने आशा भरे स्वर में कहा-"नहीं बेटा, अब सरकार और वन विभाग मिलकर इन्हें बचा रहे हैं, उन्होंने आगे बताया कि एक समय ऐसा भी आया, जब इस पूरे क्षेत्र में सिर्फ एक ही नर वनभैंसा बचा था,जिसे लोग प्यार से 'छोटू' कहते थे।

वनरक्षक ने हमें और भी बातें बताईं कि अब सरकार और वन विभाग मिलकर वन वनभैंसा संरक्षण के लिए काम कर रहे हैं, जिसके तहत असम से मादा वनभैंसे यहाँ लाई गई हैं। स्थानीय लोग जंगल के संरक्षण में सहयोग कर रहे हैं। पेड़ काटना, आग लगाना और शिकार करने से रोकने के प्रयास हो रहे हैं।

दिन ढलने लगा था। आकाश में पक्षी अपने घोंसलों की ओर लौट रहे थे। हम भी जंगल से बाहर की ओर बढ़ने लगे। हम सभी ने आखिरी बार जंगल की ओर देखा और मन ही मन सोच रहे थे-अगर हम आज प्रकृति की रक्षा करेंगे, तो कल यह जंगल, पशु-पक्षी और यह जीवन सुरक्षित रहेगा।

भारत देश हमारा

भारत का है अपना गौरव,
जग को हम बतलाएँगे।
लाल क़िले से युगों-युगों तक
ध्वज अपना फहराएँगे।
भारत के जो वीर सिपाही
प्रहरी बन खड़े हुए हैं।
वे हिमगिरि-सा रक्षक बनकर,
सीमा पर अड़े हुए हैं।
तन-मन से सदा समर्पित,
उनका यश हम गाएँगे।
हों किसान या व्यापारी,
अपना कर्तव्य निभाते।
बच्चे जवान या बूढ़े ,
वंदेमातरम् ही गाते।
हैं क़र्ज़ बहुत धरती के,
उनको सदा चुकाएँगे।
पूरब से पश्चिम तक,
हो विश्व शांति का नारा।
दिशा दिखाएँ जग को,
यह भारत देश हमारा।
मानवता का महामंत्र
बार-बार दोहराएँगे।

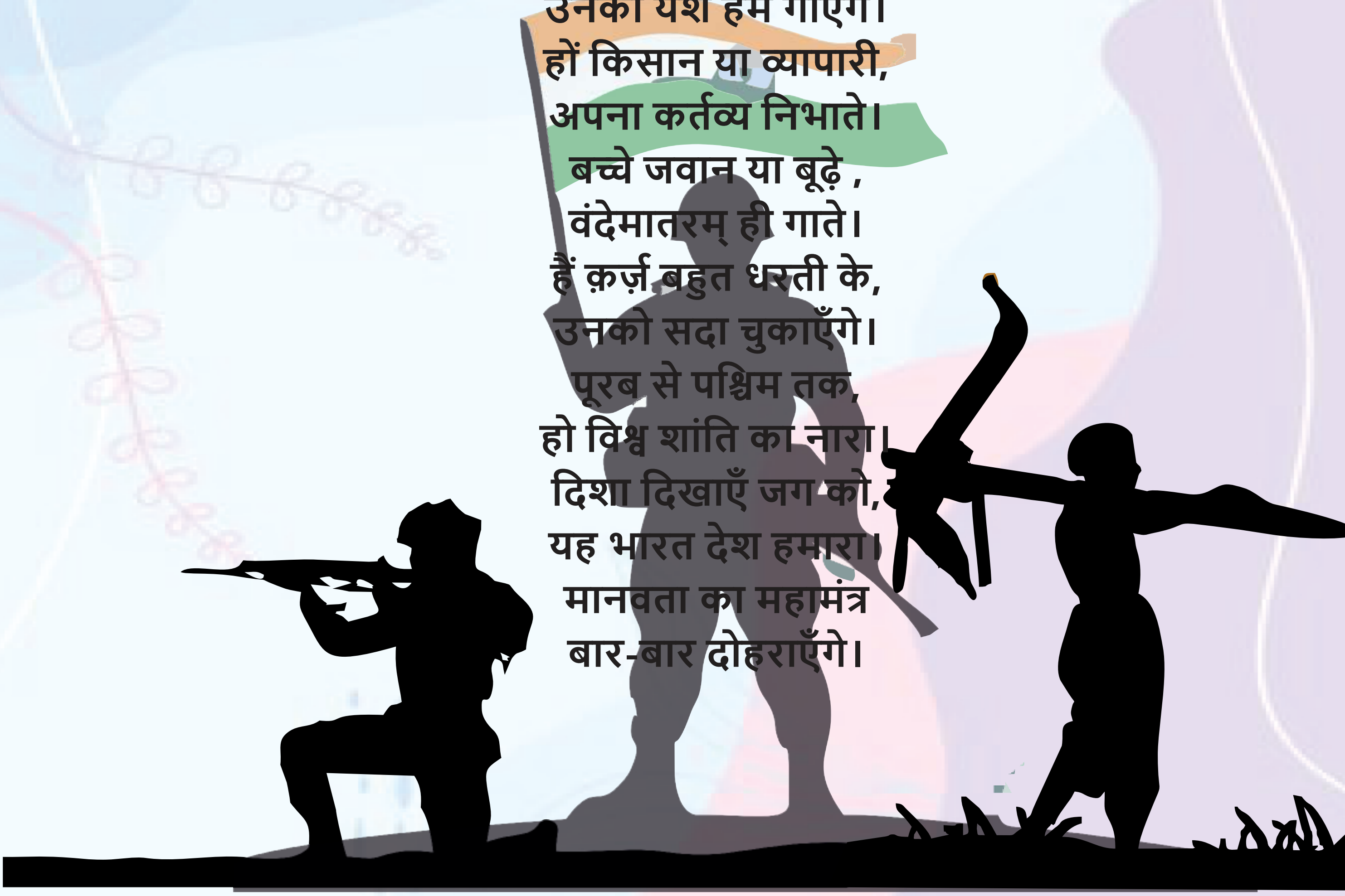

बैलाडीला पहाड़ी, दंतेवाड़ा

जिला मुख्यालय दंतेवाड़ा से 17 किलोमीटर दूर ग्राम धुरली के पश्चिम में बैलाडीला की पहाड़ियाँ हैं। यहाँ 14 पहाड़ियों की श्रृंखला है। बैलाडीला की पहाड़ियाँ समुद्र सतह से 4160 फ़ीट ऊँचे भू-भाग पर स्थित हैं। इस पर्वत श्रृंखला की स्थिति दक्षिण बस्तर के मस्तक पर तिलक के समान है। बैलाडीला की चोटी छत्तीसगढ़ में दूसरी सबसे ऊँची चोटी है। गौरलाटा 1225 मीटर ऊँचाई लिए सबसे ऊँची चोटी है और बैलाडीला की चोटी 1210 मीटर की ऊँचाई के साथ दूसरे स्थान पर है। बैलाडीला से लगभग 80 किलोमीटर दूर बंजारिन घाट से ही बैलाडीला की यह चोटी दिखाई देने लगती है।

दंतेवाड़ा ज़िले में किसी भी जगह से आपको यह चोटी जरूर दिखाई देगी। बैलाडीला नाम पड़ने के पीछे महत्वपूर्ण कारण यह है, कि इसकी सर्वोच्च चोटी का आकार बैल के डीले अर्थात बैल के कूबड़ के समान है। बैलाडीला की तलहटी में दो नगर बसे हैं, पहला बड़े बचेली और दूसरा किरंदुल। सामान्यतः बोलचाल की भाषा में किरंदुल के लिए ही बैलाडीला का प्रयोग किया जाता है जिससे प्राय: लोगों को बैलाडीला के एक नगर होने का भ्रम होता है।

बैलाडीला की लौह खदानें पूरे एशिया में बस्तर की पहचान हैं। यहाँ

एशिया की सर्वश्रेष्ठ लौह खदानें हैं। माना जाता है कि यहाँ के नाग शासकों ने अपने अस्त्र-शस्त्र के लिए बैलाडीला के लौह अयस्क का ही प्रयोग किया था। एक अनुमान के मुताबिक इन पहाड़ों में इतना लौह अयस्क है कि, यह हज़ार वर्ष तक भी खत्म नहीं होगा। यहाँ का लौह अयस्क उत्तम श्रेणी का है|

इसमें लोहे की मात्रा 60 से 70 प्रतिशत तक पाई जाती है। यहाँ राष्ट्रीय खनिज विकास निगम द्वारा सन् 1966 से लगातार खुदाई की जा रही है। आज बचेली से लगभग 15 कि.मी. दूर ऊपर पहाड़ी पर खदान नं. 5 से किरंदुल से लगभग 525 कि.मी. लंबा रेलमार्ग विशाखापट्टनम के लिए है। इसी रेलमार्ग से लोहा विशाखापट्टनम बंदरगाह भेजा जाता है, जहाँ से पानी जहाज़ में लदकर यह जापान जाता है।

उल्लेखनीय है कि एशिया का सबसे ऊँचा प्लेटफ़ॉर्म सिमलीगुड़ा इसी रेलवे मार्ग पर स्थित है। इस रेलमार्ग को भारतीय रेलवे का उत्कृष्ट नमूना माना जाता है। घाटियों से होकर गुज़रने वाले इस रेलमार्ग पर लगभग 70 सुरंगें हैं। सर्वप्रथम इस्पात संयंत्र लगाने वाले स्व. जमशेदजी टाटा ने वर्षों पहले बैलाडीला की पहाड़ियों पर सर्वे करवाया था, जिससे यह बात सामने आई थी कि विश्वस्तरीय लौह-भंडार बस्तर के इन पहाड़ियों में है। पर्यटक एनएमडीसी कार्यालय बचेली से स्वीकृति उपरांत ही इन खदानों तक पहुँच सकते हैं। यहाँ फोटोग्राफी तथा घाटियों में उतरना प्रतिबंधित है। खदानों के अलावा बचेली में महालिंगेश्वर मंदिर भी दर्शनीय है।

भतरा नाट

भतरा नाट छत्तीसगढ़ के लोकनाट्यों में से एक है, जिसमें मुख्य रूप से भतरा जनजाति के लोग ही भाग लेते हैं। इनकी बोली भतरी है। इसका नाम भतरा जनजाति के नाम पर ही है। इसमें नृत्य, गीत और अभिनय तीनों का सुंदर समन्वय देखने को मिलता है। यह नाट बस्तर की समृद्ध लोक संस्कृति का प्रतीक है। यह भतरा जनजाति बहुल बस्तर के पूर्वी क्षेत्र में अधिक प्रचलित है।

नाट जयपुर क्षेत्र की एक विधा है। जो जयपुर से होते हुए बस्तर के सीमावर्ती गाँवों तक पहुँच गई । भतरी या देसिया उड़िया भाषा की बोली है जो छत्तीसगढ़ के बस्तर ज़िले की जगदलपुर और बकावंड तहसील की प्रमुख बोली है। अतः पहले-पहल नाट बस्तर के भतरी भाषी क्षेत्र में लोकप्रिय हुआ।

लोक मान्यता है कि भतरा नाट बस्तर के पूर्व शासकों के जगन्नाथपुरी यात्रा से जुड़ा है। वे जगन्नाथपुरी से लौटने के बाद बस्तर में भी जगन्नाथ मंदिर बनवाकर रथयात्रा का आयोजन करने लगे, इससे जगन्नाथपुरी के नृत्य, नाट्य और जन संकीर्तन की परंपराओं का प्रभाव भतरा नाट पर भी पड़ा। भतरा नाट की ख्याति दूर-दूर तक है। नाट का मंचन देखने के लिए दूर-दूर

से ग्रामीण पहुँचते हैं। रात भर नाट चलता रहता है और लोग टकटकी लगाए बैठे रहते हैं। यह दृश्य आम तौर पर छत्तीसगढ़ की पहचान 'नाचा' के आयोजनों में भी देखा जाता है। शहरी रंगकर्म को जहाँ दर्शक नहीं मिलते, वहीं भतरा नाट देखने के लिए दस हजार लोगों का जुट जाना मामूली बात है। मेले, मड़ई, शादी, जन्मोत्सव- जैसे अवसरों पर भतरा नाट का आयोजन किया जाता है। इसके माध्यम से जनजातीय जीवन, परंपराएँ और सामाजिक संदेश प्रदर्शित किए जाते हैं। इस नाट में शामिल रंगकर्मी (कलाकार) पैसे नहीं लेते, बल्कि अपने गाँव का नाम रोशन करने के लिए नाटक करते हैं। लोक संस्कृति में रचे-बसे बस्तर की भतरा जनजाति की विशेषता है- रंगकर्म के प्रति इनका समर्पण। भतरा नाट कई मायनों में अनूठा आयोजन होता है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि मंच पर कलाकार संवाद नहीं बोलते, सिर्फ़ मूक अभिनय करते हैं।

इस विधा में नाटक के निर्देशक जिसे स्थानीय बोली में 'नाट गुरु' कहा जाता है। नाट में इनकी भूमिका अहम होती है। नाट गुरु अलग-अलग पात्रों का संवाद अलग-अलग आवाज़ में बोलते हैं। राक्षस का अट्टहास, बारिश की धुन, शेर की गर्जना, मोटरकार के हार्न की आवाज़ें नाट गुरु निकालते हैं। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि नाट के कलाकार इसे कर्म नहीं पूजा मानते

हैं। जिस दिन मंचन होता है, उस दिन मंडली के सभी कलाकार उपवास रखते हैं। नाचा या गाँव में होने वाली राम-लीला और कृष्ण-लीला की तरह नाट में स्त्री पात्र की भूमिका पुरुष ही निभाते हैं। भतरा नाट में भरत मुनि के नाट्य शास्त्र के अनेक तत्व विद्यमान होते हैं। जैसे नट और नटी का प्रवेश और प्रस्तावना का वाचन, मंचन के पूरे समय विदूषक (जोकर) का टेढ़ी-मेड़ी लकड़ी लेकर मंच पर उपस्थित रहना, गणेश और सरस्वती आराधना आदि। भतरा नाट में आमतौर पर पौराणिक कथाओं का मंचन किया जाता है। मेले व जन्म के अवसर पर रावण वध, कंस वध, राम व कृष्ण का जन्म आदि का अभिनय किया जाता है। मृत्यु भोज के आयोजन में राजा हरिश्चंद्र व मुंदरा माँझी की कथा, विवाह के मौके पर शिव पार्वती विवाह, राम सीता विवाह आदि का मंचन किया जाता है।

भतरा नाट एक खुले मंच पर होता है, चारों ओर दर्शक बैठते हैं। कुछ जगह वाद्य कलाकारों और नाट गुरु के लिए छोड़ी जाती है। कलाकार मंच के बाहर से पूरी नाटकीयता के साथ प्रवेश करते हैं। कलाकारों के श्रृंगार में हल्दी, आलता, पीले, लाल व नीले रंगों का प्रयोग होता है। खलनायकों के लिए हरे, नीले या काले रंग प्रयोग किया जाता है। भतरा नाट में कलाकार पारंपरिक वेशभूषा धारण करते हैं। इनकी वेशभूषा में लहंगा, चोली, झापा, माला, साड़ी, टोपी, लकड़ी से तैयार हाथी, घोड़े व हथियार आदि होते हैं। वाद्य-यंत्रों में मृदंग, मंजीरा, करताल, झाप, तुड़बुड़ी, मोहरी जैसे पारंपरिक वाद्य यंत्रों का उपयोग किया जाता है। इन वाद्य यंत्रों की ताल पर कलाकार अभिनय करते हैं। इस लोकनाट्य का उद्देश्य मनोरंजन के साथ-साथ सामाजिक शिक्षा देना है। भतरा नाट के माध्यम से आपसी सहयोग, नैतिकता, साहस और समाज की कुरीतियों पर संदेश दिए जाते हैं। भतरा नाट बस्तर की जनजातीय संस्कृति को जीवंत बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह लोकनाट्य नई पीढ़ी को अपनी परंपराओं से जोड़ने का कार्य करता है।

बाल शहीद - शिरीष पुष्पेंद्र मेहता

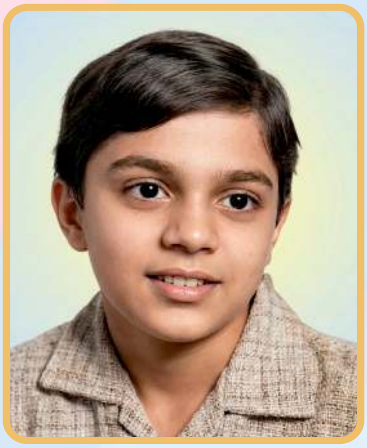

बात उन दिनों की है जब अँग्रेज़ों के अन्याय और अत्याचार से संपूर्ण भारत त्रस्त था। सभी की एक ही मंशा और एक ही उद्देश्य था कि अँग्रेज़ों को भारत से खदेड़ना ही है। अँग्रेज़ों के सामने सभी हँसकर अपना जीवन बलिदान करने के लिए तैयार थे, लेकिन किसी भी क़ीमत पर उनके सामने झुकने के लिए तैयार नहीं थे। बच्चे, बूढ़े, स्त्री-पुरुष सभी अँग्रेज़ों को देश से बाहर का रास्ता दिखाने के लिए जी-जान से जुटे हुए थे।

ऐसे ही एक वीर बालक थे- शिरीष कुमार मेहता। इनका जन्म गुजरात और महाराष्ट्र की सीमा पर स्थित एक शहर नंदूरबार में 10 दिसंबर 1926 को हुआ था। इनकी माता का नाम सविता मेहता और पिता पुष्पेंद्र कुमार मेहता थे। इनके माता-पिता व दादाजी भी स्वतंत्रता के लिए चल रहे प्रत्येक अभियान में आगे रहते थे। वही संस्कार बालक शिरीष को भी मिले। बचपन से ही भारत को स्वतंत्र देखने का सपना शिरीष के मन में पल रहा था। पढ़ाई के साथ-साथ वे ऐसी छोटी-बड़ी गतिविधियों में शामिल होने लगे। इनकी माता सविता मेहता काँग्रेस सेवादल की स्थानीय इकाई की अध्यक्ष थीं। इसलिए शिरीष भी शहर के अन्य स्वतंत्रता सेनानियों के संपर्क में भी आ गए थे।

एक बार असावधानी वश कड़ाही का गर्म तेल इनके पैर पर गिया, जिसके कारण बड़ा घाव बन गया और उन्हें असहनीय पीड़ा उठानी पड़ी । एक दिन इनके मित्रों ने कहा कि - 'तुम्हें बहुत पीड़ा हो रही होगी।'

तब शिरीष ने कहा— "इन अँग्रेज़ों के अत्याचारों के कारण भारतमाता को जो पीड़ा हो रही है, उसकी तुलना में तो यह पीड़ा कुछ भी नहीं है।"

इससे भारत के प्रति शिरीष की राष्ट्रभक्ति और संवेदना का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। एक बार उनके पिताजी व्यापार के सिलसिले में जब मुंबई गए, तो उन्होंने उनसे पूछा कि -"तुम्हारे लिए वहाँ से क्या लाऊँ?"

पिताजी का अनुमान था कि शिरीष कपड़े या खिलौनों की माँग करेगा, लेकिन उनके अनुमान के विपरीत शिरीष ने कहा कि 'मेरे लिए महात्मा गाँधी जी के भाषण की रिकार्डिंग लेते आइए।' पिताजी लौटते समय एक टेपरिकॉर्डर और महात्मा गाँधी जी के भाषणों के टेप लेते आए।

शिरीष विद्यालय में तथा विद्यालय के बाहर टेपरिकार्डर पर महात्मा गाँधी के उन भाषणों को सुनाकर लोगों के मन में स्वतंत्रता का बीज बोने लगे।

1942 में अँग्रेज़ों भारत छोड़ो का नारा जोर पकड़ रहा था। तब शिरीष और उनके बाल साथी भी अपनी टोली बनाकर 'अँग्रेज़ चले जाओ वंदे मातरम्, भारत माता की जय' आदि नारों के साथ जगह-जगह जुलूस निकालने लगे। उनका विद्यालय जाना भी लगभग छूट गया था। फिर आया 9 मार्च 1942 का वह काला दिन। उस दिन अन्य शहरों की तरह ही नंदूरबार शहर में भी अँग्रेज़ों के विरोध में रैली निकाली जा रही थी। सभी लोग भारत माता व महात्मा गाँधी की जय बोल रहे थे। सोलह बर्ष के शिरीष भी अपने प्राणों का भय त्यागकर अपने साथियों सहित हाथ में तिरंगा लेकर रैली में आगे चल रहे थे।

बाजार के बीचों बीच जब रैली पहुँची, तो वहाँ अँग्रेज़ अधिकारी अपने हथियारबंद सिपाहियों सहित पहले से ही डटा था। उसने चेतावनी दी, लेकिन उसकी चेतावनी का रैली पर कोई असर नहीं हुआ। फिर उसने लाठीचार्ज किया। रैली तितर-बितर होने लगी। ऐसे समय में वीर शिरीष तिरंगा हाथ में लेकर उस अँग्रेज़ अधिकारी के सामने खड़े हो गए। उन्होंने उसे चुनौती देते हुए कहा—"साहस है तो मुझे हटाकर दिखा।" अँग्रेज़ अधिकारी शिरीष के उकसावे से भड़क गया और पिस्तौल निकलकर शिरीष के सीने पर तीन फायर कर दिए 'धाँय.. धाँय.. धाँय...!

शिरीष 'भारत माता की जय' का घोष करते हुए वहीं शहीद हो गए। बाल शहीद शिरीष को नंदूरबार ही नहीं, बल्कि संपूर्ण देश नमन करता है।

प्रकृति के गीत

मैनें छुटपन में छिपकर पैसे बोए थे
सोचा था पैसों के प्यारे पेड़ उगेंगे,
रुपयों की कलदार मधुर फसलें खनकेंगी,
और फूल-फलकर मैं मोटा सेठ बनूँगा!
पर बंजर धरती में एक न अंकुर फूटा,
बन्ध्या मिट्टी ने न एक भी पैसा उगला।
सपने जाने कहाँ मिटे, कब धूल हो गए।
मैं हताश हो, बाट जोहता रहा दिनों तक,
बाल कल्पना के अपलक पाँवड़े बिछाकर।
मैं अबोध था, मैंने गलत बीज बोए थे,
ममता को रोपा था, तृष्णा को सींचा था।

नोट्स

नोट्स